श्रीवैश्यवंशविभूषण

सामाजिकसुधार का अपूर्वग्रन्थ

जिसको

विश्वहितैषीवैद्यराज श्रीशिवदयालुसाहुमुखेन्दु
एल. डी. बी. संस्थापक श्रीविश्वोपकारक
चिकित्सालय मिश्रित जि० सीतापुर ने

लोकोपकारार्थ

सोलह महामहोपाध्याय आचार्य शास्त्री प्रभृति
पण्डितों तथा अन्य अनुपट विद्वानों द्वारा
निर्मितकरा के प्रकाशित किया ।

"ऐंगलो ओरियन्टल प्रेस" लखनऊ.
सन् १९०७ ई०

श्रीवैश्यवंशविभूषण

जिसको

विश्वहितैषी वैद्यराज श्रीहकीम शिवदयालुसाह गुप्त
मेम्बर यल. डी. बी. संस्थापक श्रीविश्वोपकारक
चिकित्सालय रईस मिश्रित ज़िला सीतापुर ने

लोकोपकारार्थ

सोलह महामहोपाध्याय, आचार्य्य, शास्त्री प्रभृति
उपाधिधारी विद्वानों तथा कई एक अन्य पण्डितों
और ग्रेजुएट विद्वानों द्वारा निर्मित करा के
प्रकाशित किया ।

जिसमें

जातीय, सामाजिक, अध्यात्मिक और आर्थिक उन्नति के
उत्तमोत्तम प्रयत्न, सदुपदेश, शिक्षा और सर्वोपयोगी
विषयों पर उत्तम २ व्याख्यान वैदिक, आयुर्वैदिक,
नैयायिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक और धर्मशास्त्र
के ग्रन्थों के प्रमाणों सहित वर्णित हैं ।

"ऐंगलोओरियन्टल प्रेस" लखनऊ.

सन् १९०७ ई०

मूल्य प्रति पुस्तक ॥=)

ॐ

प्रार्थना

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो ह्यनन्तो न्याय कृच्छुचिः। भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥

सच्चिदानन्द आनन्दकन्द न्यायकारी दयाकारी सर्वशक्तिमान परमपावन भगवान मेरे सहायक हूजिये।

और इस पुस्तक के वाक्यों में वह करुणामय रस उत्पन्न कीजिये कि सम्पूर्ण भारतवासी द्वेषभाव त्याग कर आद्योपान्त इस पुस्तकको अवलोकन कर शिक्षा और सत्यका ग्रहण कर निज भाइयों को कुरीतियों के व्यथित भाव से बचाने के उद्योग में तत्पर होकर उन्नति साधन में सफल होवें।

——:*:——

श्रीराधारमणोजयति

समर्पण

प्रियबन्धुवर्ग !

आपका शुभ और प्रशंसनीय कार्य्य जो जात्युन्नति तथा सुधार का है उसमें मैं लघुमति सहानुभूति तो क्या कर सक्ताहूं तथापि यथाशक्ति साहस कर यह " विभूषण " आपकी सेवामें समर्पित करताहूं ग्रहण करके कृतार्थ कीजियेगा ।

भवदीय शुभचिन्तक

शिवदयालु साह गुप्त.

मिश्रित

सीतापुर,

(अवध)

——:✻:✻०✻:✻:——



श्रीवैद्यराज हकीम शिवदयालुसाह गुप्त ।

भूमिका ।

—:o:—

बड़े हर्ष और उत्साह का विषय है कि आज फिर हमारे देश भाइयों का ध्यान अपने २ समाज तथा जाति की ओर आकर्षित है। प्रत्येक विचारशील मनुष्य अपने अधः पतन को अनुभव कररहा है। और उन्नति की कांक्षा से सामाजिक सुधार पर हाथ डालाहै। जिधर देखो उधर सभायें स्थापित होरही हैं जिधर देखो उधर लेक्चरबाजी की भर मार है। परन्तु

'चार दिना की चांदनी फिर अँधियारा पाख'

जिस सभा से प्रथम यह आशा की जाती है कि उस विभाग का सुधार बात की बात में होगा। कुछदिन पश्चात् उसी की कार्य्यवाही शिथिल होने लगती है और नानाप्रकार की बातें सुनने में आती हैं। कोई कहता है कि जब तक हम में फूट है सभाओं के किये कुछ नहीं हो सक्ता, कोई परस्पर ईर्षा द्वेष पक्षपात इत्यादि को बिगाड़ का कारण बतलाता है, कोई समय का दोष देता है, कोई अपनी भाग्यको रोता है, कोई भारत की भाग्य को धिक्कारता है, कोई कहता है कि ईश्वर की इच्छा ऐसी ही है वह अभी भारत को बहुत दिन आरत रखने वाला है इसी कारण हम लाख उद्योग करते हैं परन्तु सफल नहीं होते।

प्यारे भाइयो ! यह वही भारत भूमि है जिस में अन्य २ देशों के मनुष्य सफलता प्राप्त करने के निमित्त भारत बासियों का अनुकरण करने दूरदूरसे आये हैं। यह वही पुण्यभूमिहै जिसकी रजके एक एक कणका प्रभाव विश्वविदितहै। यह वही भारतजननी है जिसमें ऐसे ऐसे महर्षि

हो गये जिन में एक २ समस्त देश के उद्धार की सामर्थ्य रखता था ।

आप उन्हीं महर्षियों की सन्तान हैं, वही रक्त नाड़ी २ में डोलता है, वही वायु स्वास स्वास में चलता है और वही सत्व रोम रोम में विचरता है । बड़े लज्जा और हँसी की बात है यदि उन्नति का बीड़ा उठा कर और वीर सुधारकों में नाम लिखा कर सुधार क्षेत्र से मुँह मोड़ो, कायर और कपूत बनकर हँसी कराओ इससमय मुझ से अब बिना कहे रहा नहीं जाता कि–

" पहिले करिबो तो सलाह नहीं, करिकै जो तजै तेहिलानत है "

उद्योगीसिंह पुरुष का ईश्वर सदा सहायक रहता है ऐसा कोई कार्य नहीं जो आप के वास्ते असम्भव हो, ऐसा कोई मार्ग नहीं जो आप के वास्ते अगम हो और ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो आप के वास्ते अलभ्य हो । अपने आत्मगौरव को पहिचानो, अपने बाहु बल को संभालो और अपनी योग्यता का सम्पादन करो ।

इस में सन्देह नहीं कि वर्तमान दशा में काम अच्छी तरह न चलते देखकर आप लोग घबड़ाये हुये हैं । इसका कारण यह है कि आपके कर्त्तव्यपालन तथा अभीष्टसाधन में त्रुटि है । जातिकी उन्नति पूरे तौर पर तभी सम्भव है जब उसकी सामाजिक, अध्यात्मिक और आर्थिक उन्नति का प्रयत्न भली भांति किया जाय ।

इसके निमित समाजीय तथा व्यक्तीय सुधार और आर्थिक विचार की अत्यंत आवश्यकता है और इन बातों के निमित्त केवल सभाओं और व्याख्यानों ही से काम नहीं चल सक्ता, जब तक कोई ऐसी पुस्तक न हो जो प्रत्येक को अपने २ कर्त्तव्य की सूचना भली भांति न करदे । केवल यह कह देनेसे कि समाजयिसुधार जातीय-

सुधार और आर्थिकविचार करने से उन्नति होगी। सर्वसाधारण कुछ नहीं समझ सक्ते जब तक प्रत्येक की युक्ति विस्तारपूर्वक सरल भाषा में तथा उनके बोलचाल में उनको कोई समझा न दे। इसी प्रकार सभायें भी अपना कर्त्तव्य भलीभांति पालन नहीं करसक्तीं जब तक उनके नियम निश्चय करनेवाला, उनका कर्तव्य चिन्तन करनेवाला और उनका उद्देश्य बतलानेवाला कोई न हो।

ऐसी पुस्तक की आवश्यकता बहुत दिनों से मैं अनुभव करता था और कई बरसोंसे उसके उद्योग में लगा था। सदा इस बातका ध्यान रहता था कि जो कार्य हो यथासम्भव अति उत्तम, सर्वोपयोगी और सर्वोपकारी हो। इस कार्य के निमित्त अकेला मैं इस योग्य न था कि इसे पूरेतौर पर परिणाम देसक्ता। क्योंकि प्रथम तो मुझ में कुछ ऐसी विद्या नहीं है, द्वितीय ऐसे गम्भीर विषय को एक मनुष्य चाहै जैसा विद्वान् करना चाहै तो उस उत्तमता से नहीं कर सक्ता जैसा कि कईएक विद्वान्, दूरदर्शी तथा कार्य्यकुशल मनुष्य करसकते हैं।

इस कारण मैंने इस विषय में काशी, मथुरा, गया, अयोध्या, प्रयाग, हरिद्वार, लखनऊ, मुरादाबाद, कलकत्ता, रतलाम, जयपुर प्रभृति बड़े २ नगरों के नामी २ विद्वानों से (जिनके नाम ग्रन्थ निर्माणकथन में धन्यवादपूर्वक लिखेगये हैं) लिखा पढ़ी की। बहुतरों के स्वयं जाकर दर्शन किये और उनकी अनुमति ली। बहुतसी सभाओं तथा उन के प्रबन्धकर्ताओं और मन्त्रियों और बहुत से ऐसे मनुष्यों से जो सामाजिक सुधार करते २ बुड्ढे होगये हैं—सम्मति लीगई। उनसे पूँछा गया कि उनकी राय में समाजोन्नति

किस प्रकार होनी चाहिये और वर्तमान समय की प्रचलित प्रथा में क्या २ त्रुटियां हैं।

इसीप्रकार बहुत से बी. ए. और एम. ए. ग्रेजुएट विद्वानों की भी सम्मति लीगई और उन से पूँछा गया कि उन के मतानुसार जात्युन्नति के निमित्त किस प्रकार की पुस्तक होनी चाहिये। इस प्रकार बहुतसे विद्वानों, बुद्धिमानों, कार्य्यकुशल और दूरदर्शी मनुष्यों की सहायता से यह "श्रीवैश्यवंशविभूषण" निर्मित हुआ है।

विशेषतः इस पुस्तक का उद्देश्य जाति की सामाजिक, अध्यात्मिक और आर्थिक उन्नति का है जिसके निमित्त क्रमशः तीन भागों में पृथक् २ जातीयसुधार, व्यक्तीयसुधार और आर्थिक विचार का प्रयत्न कियागया है।

(१) जातीयसुधार के निमित्त जातीय सभाओं का स्थापन करना कैसा आवश्यक है ? किस प्रकार उनकी कार्य्यवाही और नियमावली होनी चाहिये ? किस प्रकार उनके अधिवेशन तथा अधिवेशनों में व्याख्यानों का होना आवश्यक है ? किस प्रकार उनके उद्देश्य समाचारपत्रों द्वारा प्रकाशित करना चाहिये ? प्रत्येक सभासदका मुख्य कर्त्तव्य सभा की रक्षाकरना क्यों और किस प्रकार है ? किस प्रकार प्रत्येक सभासद के किंचित् ध्यान से सभाकी अपरिमित सहायता हो सक्ती है ? प्रत्येक सभासद का सभा से कैसा सम्बन्ध है ? परस्पर मेल और सहायता किस प्रकार उपयोगी है ? एकता का क्या प्रभाव है ? जातिज्ञान तथा कुलज्ञान से क्या अभिप्राय है ? वह किस प्रकार करना चाहिये ?

(२) व्यक्तीयसुधार के निमित्त संस्कार कैसे उपयोगी हैं वह क्या हैं और उनका तात्पर्य क्या है ? प्रत्येकसे पृथक् २ लाभ क्या हैं ? काल

चक्रने वर्त्तमान दशामें प्रत्येक को किसप्रकार खंडभंड करडाला है ? गर्भाधान से लेकर विवाहपर्य्यन्त संस्कार किसप्रकार करना चाहिये ? प्रत्येकका पृथक् २ तात्पर्य्य क्याहै ? किसप्रकार उनका संशोधन और सुरीतिप्रचार सम्भव है ? आत्मा वा मनमें शान्ति सुचेष्टा और विद्याधर्मादि गुणों के संग्रह करने के क्या उपाय हैं ? सन्तान को किसप्रकार विद्याभ्यास कराना चाहिये ? द्विजमात्रको उपनयन की कैसी आवश्यकता है ? ब्रह्मचर्यसाधन और विद्याध्ययनका वह किसप्रकार एकमात्र आधारहै ? विवाह किस अवस्था में किस प्रकार और क्यों कर होना चाहिये ? सम्बन्ध क्या है किस-प्रकार होना चाहिये ? कौनसी पांचबातों का विचार इस विषयमें आव-श्यक है और कौन २ बातें ग्राह्य और कौन २ त्याज्य हैं ?

(३) आर्थिकविचार किसप्रकार होना चाहिये ? धन कमाने के निमित्त क्या २ बातें उपयोगी हैं ? व्यवसाय कैसा करना चाहिये ? किसप्रकार के व्यवसाय त्याज्य और किसप्रकार के ग्राह्य हैं ? अर्थ धर्म शास्त्रानुसार रुपये का प्रयोजन क्या है ? व्यय किसप्रकार करना चाहिये ? उचित व्यय न होने से किस प्रकार उत्तम से उत्तम आय नष्ट हो जाती है ? आय और व्यय में कार्य्य और कारण का सम्बन्ध किसप्रकारहै ? व्यय में क्या २ विचार उपयोगी हैं ? व्यय के प्रकार के होते हैं ? सुव्यय क्या है और अपव्यय क्या है ? सुव्यय से देश की द्रव्योत्पादक शक्ति किस प्रकार बढ़ती है ? अपव्यय से अपनेही को नहीं बरन सारे देश को हानि किस प्रकार पहुंचती है? मादक पदार्थों में नौवाबी और ठसक में, नाच रंग तमाशादि में, आलस्य में और वृथा समय नष्ट करने में देश भाइयोंका कैसा अप-

व्यय हो रहा हैं ? इस का प्रबन्ध किसप्रकार होना चाहिये ? किस प्रकार देश भाइयों की आर्थिक दशा सुधर सक्ती है और देश का उद्धार हो सक्ता है ?

इत्यादि २ बातों का वर्णन ऐतिहासिक, नैयायिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, और शास्त्रोक्त प्रमाणों से किया गया है।

साधारणतः इस पुस्तक का उद्देश्य सर्वोपकार और सर्व शिक्षा का है।

(१) इस पुस्तक में जितने लेख हैं सब सर्वोपयोगी हैं। जिससे केवल वैश्य अथवा केवल द्विजाति ही नहीं किंतु सर्व वर्ण शिक्षा प्राप्त कर सक्ते हैं। क्यों कि प्रायः इस में उन्ही बातों पर शिक्षा है जिन का नित्य प्रति मनुष्य मात्र को काम रहता है।

(२) इस पुस्तक में कोई विषय ऐसा नहीं है जिससे किसी का चित्त दुखै, इसे सनातनधर्मी, वैष्णव, शैव, स्मार्त्त, आर्य्यसमाजी इत्यादि सभी आनन्द पूर्वक पक्षपातरहित दृष्टि से पढ़ कर शिक्षा ग्रहण कर सक्ते हैं।

(३) इस पुस्तक की भाषा ऐसी सरल है कि जिस को सर्व-साधारण भली भांति समझसकै जहां तक हो सका है नित्य प्रति के बोल चाल के शब्द रक्खे गये हैं और क्लिष्ट संस्कृत शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है।

(४) इस पुस्तकमें रोचकता पर विशेष ध्यान दिया गयाहै। जो सर्वोपयोगीविषय क्लिष्ट से क्लिष्ट और रूखे से रूखे हैं वह भी इस प्रकार लिखे गये हैं कि अतिशय रोचक हो गयेहैं। शिक्षा प्रायः सब को कड़वी लगती है परन्तु इस में इस यत्न से शिक्षा दी गई है कि अतिशय मीठी और कर्णप्रिय है।

(५) इस पुस्तक में सब प्रकार के पाठकों को प्रसन्न करने का उद्योग किया गया है। धर्मशास्त्रवालों को धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्रवालों को नीतिशास्त्र, आयुर्वेदवालों को आयुर्वेद, वैज्ञानिकों को विज्ञानशास्त्र, साइन्सवालों को साइन्स के ग्रंथों के वह २ चुटकुले और प्रमाण इस में मिलैंगे कि दिल फरक उठैगा। और जो नावेल और कविता के प्रेमी हैं उन के लिये भी इस में कमी नहीं है, एकबार देख ने से बिना समाप्त किये रहा न जायगा।

(६) इस पुस्तक में जो २ बातैं कही गई हैं सब सहित प्रमाण कही गई हैं और जो २ बातैं करने को कही गई हैं उनके साथही उनका कारण बतलाया गया है कि ऐसा करैं तो क्यों करैं उस का क्या तात्पर्य्य है और उससे क्या लाभ है। बुद्धि के विपरीत कोई बात नहीं कही गई है। जो २ प्रमाण कारण अथवा तात्पर्य्य बतलाये गयेहैं उनके निमित्त विश्वास की आवश्यकता नहीं है प्रत्यक्ष बुद्धि प्रमाण से सिद्ध कर दिये गये हैं। जिस को मन स्वभावतः ग्रहण करले।

(७) इस पुस्तक से प्रत्येक सभा अपरिमित लाभ उठा सक्ती है चाहै जिस जाति की सभा हो क्यों कि प्रायः इस में वही लेख हैं जिनकी अधिक आवश्यकता है। जो सुधार के निमित्त आवश्यक हैं और जो सर्वोपयोगी हैं।

उन्नतिसाधन, एकता, कर्त्तव्यचिन्तन, कार्य्यसाधन, जातिज्ञान, कुलज्ञान, सुरीतिप्रचार, कुरीतित्याग, स्वदेवपूजन, मदारबाबा—भूत प्रेत--फूंक हांक खण्डन, संततिसुधार, पुत्रशिक्षा, पुत्रीशिक्षा, ब्रह्मचर्य्य साधन, बालविवाह तथा अनुचित वयविवाहत्यागन, विवाह में नाच रंग, अधिकबरात, ठहरौनी इत्यादि–वर्जन स्वदेशप्रेम स्वदेशीपदार्थों

का वर्त्तना, गांजा, भांग, इत्यादि मादकपदार्थों का त्याग, आलस्य और वृथा समय नष्ट करना इत्यादि २ विषयों पर व्याख्यानकी रीति पर उत्तम २ कथन हैं जिसमें विशेष सुभीता यह है कि यदि सभा के किसी अधिवेशन में व्याख्यान देने वाला कोई न हो तो जिस विषय पर इच्छाहो इस पुस्तक से पढ़ कर सामान्य मनुष्य (जिसे केवल अक्षर का ज्ञान हो) काम चला सक्ता है । सभा संबंधी प्रायः सब विषय इस में मौजूद हैं ।

(८) इस पुस्तक से व्याख्यान देनेवालों को भी बड़ा सुभीता होगा प्रायः नित्यप्रति के उपयोगी सभी विषय इस में आगये हैं । जिस के निमित्त उन को सोचने विचारने तथा प्रमाण ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं है सब सामान एकही जगह पर मिलैगा । यहकहना अत्युक्ति न होगा कि सहायता कितनी बड़ी बात है यह पुस्तक व्याख्याता बनाने को समर्थ है ।

(९) इस पुस्तक से पण्डित लोग विशेष सहायता पासक्ते हैं क्योंकि वर्त्तमान काल में यदि किसी पण्डित ने कोई कार्य्य या संस्कार बतलाया तो प्रायः प्रश्न यह होता है कि वह क्यों करैं ? उस के करने से क्या होगा ? यहां तक कि यज्ञोपवीत ऐसे श्रेष्ठ संस्कार को जिस के बिना मनुष्य द्विज होताही नहीं है लोग पूंछने लगते हैं कि तीन धागे डालने से क्या होता है ? इससे धोती अंगोछा कांछे में तो अधिक सूत है उस के डालने से क्यों नहीं द्विज होते ? फिर तीन धागे क्यों डालैं ? उस में तीनही लड़ैं क्यों हों कन्धेही पर क्यों डालैं फिर विशेष कर बांयें ही कंधे पर क्यों लघुशंकादि में उसे कान पर क्यों चढ़ावैं ? इत्यादि २ नाना प्रकार के प्रश्न होते हैं जिस से प्रायः पण्डित लोग घबड़ा जाते हैं । परंतु अब घबड़ाने का काम

नहीं है। इस पुस्तक में सब का कारण, अभिप्राय तथा उत्तर सप्रमाण दिया गया है।

(१०) इस पुस्तक को प्रत्येक ब्राह्मण अपने पास रखने से अपने को स्वार्थी और मायावी होने के कलंक से बचा सकैगा। और अपनी श्रेष्ठता का परिचय भली भांति दे सकैगा। जो लोग यह कहते हैं कि यह सब पंडितों की गढ़न्त है, अपने पाने के निमित्त सब गढ़ लिया है उन के पुरखे बड़े दूरदर्शी थे वह जानते थे कि आगे हमारे लड़के नालायक होंगे अतः ऐसे २ नियम रचगये कि जिनसे उनकी सन्तान को किसी प्रकार से भरण पोषण में कठिनता न पड़े, न कुछ कर सकेंगे तो भी पुजा खायँगे। ऐसा कहने वालों का भ्रम निवारण हो जायगा। और उनको विदित हो जायगा कि ब्राह्मणों के कार्य्य कैसे स्वार्थ से परे और देशहितैषिता से पूर्ण थे और शेष तीन वर्ण उन के किस प्रकार ऋणी हैं।

(११) यह पुस्तक गृहस्थों के बड़ेही काम की है। गृहस्थी को किस प्रकार चलाना चाहिये? रोज़गार कैसा और किस प्रकार करना चाहिये? अपनी आय व्यय का प्रबन्ध कैसा करना चाहिये? इत्यादि २ गृहस्थसम्बन्धी बातों के निमित्त इस पुस्तक के पढ़ने से किसी सम्मतिदाता तथा कार्यकुशल की आवश्यकता न रहैगी।

(१२) इस पुस्तक से शिक्षा तथा लाभ प्राप्त करनेसे जिसमें कोई वंचित न रहैं इसका मूल्य केवल ॥=) ग्यारह आना लागत के दाम रक्खे गये हैं। परन्तु जातीयसभा और जातीयसमाचारपत्रों को बिना मूल्य दी जावैगी और जो भाई इस पुस्तकको पढ़ने और समझनेकी योग्यता रखते हों और दरिद्रता के कारण इसे न लेसक्ते हों उनको भी यह पुस्तक बिना मूल्य दी जावैगी। परन्तु उन को

यह बात सत्यता के साथ कहनी होगी कि वह ऐसे रंक हैं कि उनके किये ग्यारह आना किसी प्रकार नहीं होते।

(१३) यह पुस्तक जब इस प्रकार सर्वोपयोगी और सर्वशिक्षामय है कि जिस से प्रत्येक मत, प्रत्येक सभा, प्रत्येक व्याख्याता, प्रत्येक पंडित, प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक जाति, प्रत्येक गृहस्थ और प्रत्येक मनुष्य लाभ उठा सक्ता है तब इसे केवल वैश्यवंशविभूषण की उपाधि क्यों दी गई इसको विश्वविभूषण की उपाधि से सुशोभित करना चाहिये था।

वर्त्तमान समय में लोग ऐसे प्रशंसाप्रिय होते हैं कि नाम बहुत बड़ा रखदेतेहैं परन्तु गुण कुछभी नहीं। यही कारण है कि धीरे २ अब विज्ञापनों और पुस्तकोंका विश्वास जाता रहा। ऐसे समय में जो वस्तु अपने नामानुसार भी गुण रखती है वह बहुत प्रशंसनीय गिनी जाती है फिर उसको क्या पूँछना है जिस में नाम के अनेकगुणा गुण हों।

"श्रीवैश्यवंशविभूषण" का जन्म वैश्यही के घर हुआ है अतः इस को नाम भी वैसाही दिया गया है परन्तु यदि इसका नामकरण इस के गुणानुसार करना है तो पाठकों को अधिकार है कि इस को चाहे जितनी उपाधियों से विभूषित करते जावें।

ग्रन्थनिर्माण कथन।

यह "श्रीवैश्यवंशविभूषण" निम्न लिखित विद्वानों की कृपा का फल है जिनकी सहानुभूति के निमित्त अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं और मुग्ध कंठ से हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

(१) श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वराचार्य्य श्रीराधाचरण गोस्वामी विद्यावागीश औनरेरी मजिस्ट्रेट मैनेजर श्रीकृष्णचैतन्यपुस्तकालय मंत्री अनाथालय श्रीवृन्दाबन जिला मथुरा।

(२) श्रीस्वामीराममिश्र शास्त्री महामहोपाध्याय भूतपूर्व अध्यापक गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस।

(३) श्रीमान् पं० रामकृष्ण शास्त्री संस्कृत प्रधानाध्यापक ओरेन्टल डिपार्टमेंट कैनिंगकालेज लखनऊ।

(४) श्रीमान् पं० देवेन्द्रनाथ चक्रवर्ती एम.ए. संस्कृत प्रोफेसर कैनिंग कालेज लखनऊ।

(५) श्रीमान् पं० सरयूप्रसाद द्विवेदी आचार्य पंडिततपुरी जिला फैजाबाद।

(६) श्रीमान् पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा द्विवेदी आचार्य्य प्रधानाध्यापक संस्कृत कालेज जयपुर।

(७) श्रीमान् पं० मृत्युंजयाचार्य द्विवेदी प्रधानाध्यापक संस्कृत पाठशाला हलोर जिला रायबरेली।

(८) श्रीमान् पं० जगन्नाथ शर्मा शास्त्री अध्यापक दरभंगा पाठशाला श्रीकाशी।

(९) श्रीमान् पं० ज्वालाप्रसाद विद्यावारिधि महोपदेशक श्री भारत धर्म महामण्डल मुरादाबाद।

(१०) श्रीमान् पं० देवकीनन्दन शास्त्री श्रीअयोध्याजी ।

(११) श्रीमान्पं०गिरिजादत्तशास्त्री पिलखावां जि०फैजाबाद।

(१२) श्रीमान् पं० विश्वेश्वर शर्माशास्त्री श्रीगयाजी ।

(१३) श्रीमान् पं० लक्ष्मीनारायणशर्मा शास्त्री कोटारीवास जि० रतलाम (मालवा)

(१४) श्रीमान् पं० नन्दप्रसादशर्मा शास्त्री संस्कृताध्यापक रियासतचन्दापुर जि० रायबरेली ।

(१५) श्रीमान् पं० ब्रह्मचारी दयानन्दशर्म्मा बाजपेयी औनरेरी मुन्सिफ रईस सिंगीरामपुर स्थल जि० फ़र्रुख़ाबाद ।

(१६) श्रीमान् पं० जयराम शास्त्री संस्कृतटीचरगवर्नमेन्टहाईस्कूल प्रतापगढ़ ।

श्रीयुत पूज्यपादमाननीय श्रीमन्माध्वगौड़ेश्वराचार्य्य श्रीराधाचरण गोस्वामीजी ने इस विषय में विशेष ध्यान देकर समय २ पर आवश्यकतानुसार उचित सहायता की है जिस के निमित्त पूर्ण रूप से धन्यवाद देना शब्दों द्वारा असम्भव है केवल मनमात्रही का अनुभव सम्भव है ।

इसके अतिरिक्त कई एक अन्य पण्डित और ग्रेजुएट (बी० ए० तथा एम० ए०) विद्वान् मेरे धन्यवादभाजनहैं परन्तु जो श्रम सहायता तथा कृपा श्रीमान् पण्डित विश्वनाथजी त्रिवेदी कोरौना जिला सीतापुर ने किया है सर्व शिरोमणि और सराहनीय है । आप जिस समय कैनिङ्ग कालेज में बी० ए० क्लास के विद्यार्थी थे उस समयसे आज तक समय २ पर आवश्यकतानुसार अपरिमित सहानुभूति की है । इसलेखनी तथा जिह्वा की सामर्थ्य नहीं है कि इस कृपाके प्रत्युपकार में यथोचित धन्यवादही दे सकै ।

——:*:०:*:——

ग्रन्थसंकेत कथन।

इस पुस्तक में जिन २ ग्रन्थों के प्रमाण दिये गये हैं उनके मुख्य संकेत यह हैं।

नामग्रन्थ	संकेत
ऋग्वेद	ऋ०
यजुर्वेद	यजु०
अथर्ववेद	अथ०
मंडल	मण्ड०
सूत्र	सू०
मंत्र	मं०
प्रपाठक	प्र०
कांड	कां०
गृह्यसूत्र	गृ० सू०
शतपथ ब्राह्मण	श० ब्रा०
गोपथ ब्राह्मण	गो० ब्रा०
मनुस्मृति	मनु०
पाराशर स्मृति	परा० स्मृ०
हारीत स्मृति	हारी० स्मृ०
अत्रिस्मृति	अत्रि० स्मृ०
विष्णु स्मृति	विष्णु० स्मृ०
अनुस्मृति	अनु० स्मृ०
याज्ञवल्क्यस्मृति	याज्ञ० स्मृ०
अध्याय	अ०
श्लोक	श्लो०
सुश्रुत	सुश्रु०
चरक	चर०
अष्टाङ्गहृदय	अष्टा० हृ०
शारीरकस्थान	शा०
चिकित्सा	चि०

नामग्रन्थ	संकेत
गोभिल गृह्यसूत्र	गो० गृ० सू०
बृहदारण्यकउपनिषद्	बृह० उ०
छान्दोग्य उपनिषद्	छां० उ०
वात्स्यायन	वा०
कात्यायन	का०
कण्डिका	कं०
भागवत	भा०
स्कंध	स्कं०
भगवद्गीता	भ० गी०
महाभारत	महा०
पर्व	प०
रामायण	रा०
सर्ग	स०
पूर्वभाग	पू०
उत्तरभाग	उ०
नीति	नी०
चाणक्यनीतिशास्त्र	चा० नी० शा०
भोजप्रबन्धसार	भो० सा०
ब्रह्माण्डपुराण	ब्र० पु०
पद्मपुराण	प० पु०
अग्निपुराण	अ० पु०
सुभाषितरत्नभाण्डागार	सुभा० र० भा०
पञ्चतन्त्र	पञ्च०
मित्रभेद	मि० भे०

सूचीपत्र ।

:o:

ओ३म्

श्रीवैश्यवंशविभूषण

प्रथमभाग

उन्नतिसाधन।

सर्वमंगलमय सच्चिदानन्द आनन्दकन्द परमात्मा को कोटिशः धन्यवाद है कि भारत में आज फिर उत्साह की धूम मची है। जिसे देखो उन्नति की बातचीत कर रहा है, जिसे देखो अपनीही उन्नति का इच्छुक है, जिसे देखो दत्तचित्त से उन्नति के खोज में है, जिसे देखो उन्नति के साधन में तत्पर है, परन्तु सफलता बहुत कम देख पड़ती है। कोई कलियुग का माहात्म्य बतलाता है कोई भाग्यका दोष देता है अपना दोष कोई नहीं देता। यह किसी के मुख से न सुना कि हमारा उन्नति करने का ढंगही ठीक न था। जिसे देखो अपनी अलग तान रहा है। कोई कहता है कि विद्याप्रचार होने से उन्नति सम्भव है, कोई कहता है जब तक वर्णबिभाग रहेगा उन्नति होही नहीं सक्ती, उन्नति तभी होगी जब इण्डिया नेशन (भारत एक क़ौम) बन जायगी क्योंकि जिन प्रदेशों ने उन्नति की है वहां सर्वत्र नेशन हैं

कोई कहता है कि उन्नति तभी होगी जब सब अपने २ धर्म्म पर चलेंगे इत्यादि २ ।

प्यारे सुजनो ! कहना सब का ठीक है परन्तु करने और समझने में भ्रांति है । जो महाशय यकायक विद्या का प्रचार चाहते हैं उन की दशा वैसीही है कि जब घर में आग लगी हो तब कुआं खोद कर पानी निकालने का प्रयत्न करें । यह कौन नहीं जानता कि हमारे दुःख और अवनति का कारण अविद्याही है। पूर्व काल में जब विद्या का सूर्य्य प्रकाशमान था तब हमारा देश भी उन्नति के शिखर पर शोभायमान था, परन्तु अब इस समय में उसी तरह विद्या का प्रचार करना मुंह का कौर नहीं है । विद्याप्रचार सर्वथा उचित है, उस का प्रयत्न होना चाहिये कि जिस में अब हमारे बालक मूर्ख न रहने पावें परन्तु इस समय अधिकांश समाज को सुधारने के निमित्त कोई औरही उचित उपाय करना योग्य है ।

जिन महाशयों का उद्योग इण्डियानेशन बना देने का है वह भी धन्यवाद देने के पात्र हैं । प्रार्थना केवल इतनीही है कि काम सोच बिचार कर करें, वर्ण विभाग का मिटा देना नेशन बनाने में सहायक न होगा, जिन प्रदेशों ने उन्नति की है और नेशन हो रहे हैं (डिवीजन आफ लेबर) अर्थात् एक प्रकार का वर्णविभाग उन में भी है, प्रत्येक वर्ण के कामकाज पृथक् पृथक् हैं, यदि सहभोज्यता को लक्ष्य मानकर नेशन बनाना चाहते हो तो यह बड़ी भूल है । यहां तो सगे भाई भाई एकही पत्तल के खानेवालों में जितना द्वेष पाया जाता है उतना पड़ोसियों में नहीं । प्रेम बढ़ाने के वास्ते सह भोज्यताकी शरण लेना महा भूल है । प्रेम तभी होगा जब स्वार्थत्याग होगा, द्वैतभाव न रहेगा । वर्ण बिभाग की परिपाटी आज की नहीं

है—उस समयकी है जब भारत समस्त संसारके प्रदेशों में बढ़ाचढ़ा था और भारतवासी सर्व देशवासियों में उन्नत थे, अतः किसी पुरानी प्रथा को सहसा मिटा देना बुद्धिमानी का काम नहीं है ।

जिन महाशयों का कथन है कि उन्नति धर्मपथपर चलने ही पर हो सक्ती है उनका भी कहना बहुत ठीक है। परन्तु शोक तो यह है कि आज कल गोसाईं तुलसीदास जी की कहावत हो रही है— " मारग सोइ जाकहँ जो भावा । पण्डित सोइ जो गाल बजावा "। नाना प्रकार के मतमतान्तरों ने धर्म का अंगभंग कर डाला है परस्पर द्वेष की नींव डालदी है । किसी ने शिव को बड़ा मान विष्णु आदिकों को तुच्छ समझा, किसी ने देवी व विष्णु को श्रेष्ठ समझ शिव के उपासकों को चाण्डाल बनाया, किसीने सबको त्याग कुछ अन्यही मत चलाया, उपदेश करना उपदेशकों का काम नहीं रहा किन्तु एक दूसरेकी निन्दा करना, दिलदुखाना, द्वेष बढ़ाना काम रह गया । प्राचीन कालमें कोई शुभ कार्य होताथा तो धर्म आगे आता था धर्महीके नामसे सब काम होतेथे, धर्म बंधन से बढ़कर कोई बन्धन न था । धर्मभयसे बढ़कर कोई भय न था। और धर्म त्यागसे बढ़कर कोई घोर पाप न था नित्यप्रति गृह और शरीर की सफाई के नियमों में भी धर्म भय लगा दिया गयाथा जिसका पालन आजकल की सफाई के अफ़-सरों के क़ानून से बढ़कर होताथा । धर्मभय, राजभय तथा दण्डभय से कहीं अधिकथा परन्तु अबतो मतमतान्तर और खैंचातान ने शास्त्रों का गौरव भ्रष्ट करडाला । धर्म २ कहकर धर्मका नाश करदिया अब कोई सभा हो तो पहिले यही बातहोती हैकि धर्मसंबन्धी कोई विषय न हो। कहीं कोई शिक्षालय अथवा पाठालय हो, धर्म के नामसे एक अक्षर भी गुरू नहीं बतलासक्ता । बतलावै किस तरह ? कठिनता तो यहहै कि

गुरू का मत और है और चेले जितने हैं उनके भी उतनेही मत हैं। कोई लेखक पुस्तक भी लिखता है तो प्रथम बिचार यही करता है कि धर्मविषय न हो नहीं तो सर्व साधारण ग्रहण न करेगा। भाइयो ! जब धर्म की खदेड़ इसप्रकार है कि बिचारा कहीं नहीं पूछाजाता तो मुझे आश्चर्य होता है कि धर्म के नाम से आप क्योंकर वर्त्तमान समय में उन्नति करसक्ते हैं आप की सम्मति अब से चार पांच हजार बर्ष प्रथम उन्नति साधन के अर्थ अवश्यही उपयोगी हुई होती और अब भी हजार पांचसौ बर्ष में यदि ईश्वर वह दिन दिखावै कि भारतवासी प्रथम की नाईं विद्वान हो वेद शास्त्र के ज्ञाता होजावैं और सर्व साधारण की सम्मति से निर्णय होकर एक धर्म हो जावै तौ होसक्ती है, परन्तु वर्त्तमान समय में वर्त्तमान कालही के अनुसार कोई यत्न सोचना चाहिये ।

प्रियपाठक ! उन्नति कोई अलभ्य पदार्थ नहीं है, उन्नति साधन कोई कठिन वस्तु नहीं है, उन्नति तौ स्वभावतः सभी करते हैं बिना उन्नति करने के कोई रहही नहीं सक्ता, प्रकृति का नियमही उन्नति करने का है। चाहै कोई उन्नति का उद्योग करै या न करै इस बात को विज्ञानशास्त्र के जाननेवाले भलीभांति समझते हैं कि प्रत्येक संसारी वस्तु स्वतः उन्नति कररही है। अपना काम केवल इतनाही है कि प्रकृति के नियमों में कुछ विघ्न न होने पावे ।

तद्यथासात्म्येन्द्रियार्थसंयोगेन वुध्यासम्यग वेक्ष्यावेक्ष्यकर्म्मणां सम्यक् प्रतिपादनेन देश-कालात्मगुणविपरीतोपसेवनेनचेति—तस्मादा-

स्माहितञ्चिकीर्षता सर्वेण सर्वं सर्वदा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम् ॥

(चर० सं० सू० स्था० अ० ८)

आत्मा के अनुकूल इन्द्रिय विषयों के संयोग करके बुद्धिके द्वारा अच्छी तरह विवेचना करके कर्मों के सेवन करने से तथा देश गुण कालगुण और आत्मा गुणके अविरुद्ध अच्छी तरह प्रतिपादन किये हुए कर्मों को सेवन करने से मन और इन्द्रियगण प्रकृति भावमें रहते हैं। इस लिये उन मनुष्यों को जो आत्मसुख की इच्छा करते हैं उचित है कि वे सदा सम्पूर्ण प्रकारसे चित्तको स्थिर और सावधान करके सम्पूर्ण सत्काय्यों का अनुष्ठान करैं। साथही यह भी स्मरण रहै कि प्रकृति के नियम स्थायी नहीं हैं, सदा सर्वदा सोते जागते कार्य कियाही करते हैं, उनके अनुकूल होने से उन्नति और प्रतिकूल होनेसे अवनति होतीहै, यह नहीं है कि उन्नति रुकजाय तो अवनतिमें लगा न लगजाय। दो में से एक हुआही करैगा याता उन्नति होगी या अवनति। बहुतसे महात्मा ऐसे भी हैं कि वह उन्नतिकी चेष्टा करते हैं परंतु आलस्यवश आज नहीं कल, कल नहीं परसों पर डाल रखते हैं। उनको समझना चाहिये कि कोई काम बंद नहीं है, जितनाही विलंब होता है उतनी ही अवनति अधिक होती जाती है-अतः—

निजहित कुलहित जगतहित, अहै जो निजकर्तव्ब।
कालिह करन्ते आज कर, आज करन्ते अब्ब ॥

जब इतनी जल्दीहै कि कल करना है वह आज ही किया जाय और आजकरनाहै वह अभी किया जाय तो वह कौनसा सरल उपाय

है ? वह कौनसा गुरुहै ? वह कौनसा प्रयत्नहै कि हमारे समाज के छोटे, बड़े, धनी, निर्धन, विद्वान्, अविद्वान् और बालक, स्त्री, जवान, वृद्ध सभी सुगमता से आजही तथा अभी से आरम्भ करदें—

एकता ! एकता ! एकता !

वह एकता है जिस के होने से सब काम बिना परिश्रम ही सिद्ध हो जाते हैं । देखिये तिनके कैसे लघु पदार्थ हैं वे भी जब एकता धारण करते हैं तो रस्सा हो कर हाथी को बांध लेते हैं । एक बूंद पानी की कोई हस्ती नहीं है, परंतु एक २ मिलकर अगाध जलसागर हो जाते हैं और सैकड़ों गांवोंके डुबा देनेकी सामर्थ्य हो जाती है । एक और एक पृथक् २ चाहे जितने हों, एकही रहतेहैं । परंतु दो एक भी एक साथ हो जायं तो ग्यारह हो जातेहैं । इसी प्रकार प्रति एकाई की शक्ति एकता धारण करने से तत्काल ही दशगुनी बढ़ जाती है । जिनको साइन्स का कुछ ज्ञान है, वह भली भांति जानते हैं कि कार्बन (कोयला) के परमाणुओं में जब एकता अधिक बढ़ जाती है तब वह शीशा बन जाता है और जब उस से अधिक एकता धारण करताहै तब हीरा बनजाताहै । कोयले का हीरा बनादेना एकता हीका कामहै । क्यों न हो एकता का प्रभाव ही ऐसाहै । जब जड़ पदार्थों के सम्मिलित होनेसे प्रत्येककी शक्ति कई गुनी बढ़ जातीहै तो मनुष्यों को क्या कहना है । उदाहरणके निमित्त अमेरिका आदि देश मौजूद हैं, जहां एकता के प्रभाव से प्रजाही राज्य करती है । इंगलैण्ड आदि में भी एकता भवानीका प्रभाव गुप्त नहीं है । राजकर्मचारी कोई भी काम प्रजाके प्रतिकूल नहीं करसक्ते । प्रत्येक पदाधिकारीका नियत करना प्रजाही के अधिकार में है । अधिक उदाहरणों की आवश्यकता नहीं

पाठक इतनेही से भली भांति समझ गए होंगे। जिस एकता में कोयले से हीरा और प्रजासे राजा बनादेन की सामर्थ्यहै उस एकताको धारण करके ऐसी कौन जाति तथा देश है जो उन्नति न कर सके। यहां पर शंका होती है कि नाना प्रकार के मनुष्यहैं और उनके नाना प्रकार के स्वभाव हैं उन में एकता क्यों कर हो सक्तीहै। उत्तर में निवेदन यह है कि दूर न जाइये अपने शरीरही में देखिये आंख, कान, नाक, मुंह हाथ पैर इत्यादि इन्द्रियां नाना प्रकारकी हैं और प्रत्येक इन्द्रियों में नाना प्रकार की अनेकानेक हड्डियां नसैं और रक्त परमाणु (ब्लड आरटरीज़) हैं प्रत्येक का स्वभाव भिन्न २ है प्रत्येक का कार्य पृथक् पृथक् है अंग के इन लाखों बिभागों में यदि किंचित् भी अनैक्यता हो जाय तो शरीर की स्वास्थ्य में विघ्न हो जाता है। फिर उस समाज की गति को क्या रोना है जिस में सभी भाई न्यारे २ स्वार्थसाधक हों। भला हम आप से पूंछते हैं कि यदि आप के शरीरही में इंन्द्रियां स्वार्थसाधन में लग जांय हाथ कहैं कि कमाते हम हैं पैर कहने लगें कि दौड़ते धूपते हम हैं आंखैं कहें कि पदार्थों का ज्ञान तो हमहीं करते हैं इसी प्रकार सब इंद्रियां पेट के प्रतिकूल ईर्षा करके कहने लगें कि कमाते और काम करते तो हम लोग हैं पेट सब का सब क्यों गपक जाता है तो परिणाम यह होगा कि पेटको हानि पश्चात् पहुंचैगी परन्तु हाथपैर पहिलेही ढीले पड़ जावैंगे आंखोंमें पहिलेही धुंध छाजावैगी। शरीर का सब काम तभी चलता है प्रत्येक इन्द्रियगण तभी आनन्दित रहते हैं, जब तक शरीर में एकता है सब पृथक् पृथक् अपना २ कर्तव्य करते हैं हाथ पैर परि-श्रम करके नेत्रादि देख भालकर पैदा करते हैं। पेट सब को जठराग्नि में भून कर पचाताहै खोझड़ दूसरी इन्द्रियां निकाल कर फेंकदेती हैं

सब का रक्त बनता है दिल उसे शरीरकी सारी इंद्रियोंको पहुँचता है। इससे नतीजा यह निकलता है कि स्वार्थ तभी होता है जब पहिले परार्थ साधन किया जाय इन्द्रियों का अर्थ तभी बनता है जब पहिले सब वस्तु पेट के हवाले कर देती हैं। एकताका अर्थ भी अब मुझे पृथक् समझाने की आवश्यकता नहीं है इसी उदाहरण से पाठकगण भली भांति समझ सक्ते हैं कि एकता उसी का नाम है कि बाहर से सब अलग २ हों अपने २ कर्त्तव्य को दत्तचित्त से करें परन्तु अंतःकरण से सब एक हों। जैसे शरीर की इंद्रियां बाहर से स्वरूप में, स्वभाव में और कार्य साधन में सब पृथक् २ हैं परन्तु अन्दर से द्वैत भाव हैही नहीं सब का जीवन शरीर पर निर्भर है शरीर का जीवन उन पर निर्भर है। कुछ यह दशा मनुष्य शरीरही की नहीं है किंतु उस परम पिता ने संसार में जितने शरीर बनाये हैं गृष्टि क्रम में जितने नियम किये हैं सब में एकता है। भाइयो ! आप चाहै जिस बस्तु से शिक्षा ले सक्ते हो वृक्ष तो नित्य प्रति आप के सामने हैं प्रत्येक के पंचांग (जड़,तना,शाखा,पत्र,छाल,) इत्यादि बाहरसे देखने मात्र को पृथक हैं अंदर सब एक हैं, जड़ पृथ्वी से पानी सोंक २ कर खाद से लवण निकाल २ कर तने को पहुँचाती है तना सम्पूर्ण वृक्षका बोझ उठाये हुये है जो कुछ जड़ उसे पहुँचाती है वह आपही नहीं गपक जाता किंतु सब अंगों को पहुँचाता है। इसी प्रकार शाखा पत्तोंको संभालती हैं पत्र वायु में से कारबोनिक एसिड गैस निकाल २ कर शाखाओं को पहुँचाता है जो शाखायें तने तक और तना जड़ तक पहुँचाताहै, छाल शीतातप के कष्ट स्वयं सहन करके सब की रक्षा करती है, तभी सब के काम चलते हैं। जब बाहर से पृथक २ अपने २ कर्त्तव्य को करते हुए अंतःकरण में एकभाव रखकर स्वार्थ साधन परार्थ में करते

हैं यद्यपि सब के जीवन पृथक् हैं, सब के भोजन पृथक् हैं, सब की उन्नति पृथक् है । परन्तु प्रत्येक विभाग का जीवन सम्पूर्ण वृक्ष पर निर्भर है इसी प्रकार सम्पूर्ण वृक्ष की उन्नति प्रत्येक विभाग पर निर्भर है। यही नहीं किन्तु प्रत्येक विभाग का भी निर्वाह केवल सम्पूर्ण वृक्ष ही से नहीं होसक्ता, प्रत्येक विभागभी अपनी बारी में प्रत्येक विभाग का मुहताज है, संसार में जिस जाति तथा देश ने उन्नति की है ऐसे ही उदाहरणों को लक्ष्य मानकर किया है और तभी सफल हुये हैं। इस बात को भलीभांति समझ लिया है कि देश तथा जाति की हानि में हमारी हानि पहिले है । इसी प्रकार देश और जाति के सुख पर हमारा सुख और दुःख पर दुःख, उन्नति पर उन्नति और जीवन पर जीवन निर्भर है ।

क्या जापानियों को इस बात का भलीभांति ज्ञान न होता तो इन की सामर्थ्य थी कि रूस ऐसे बड़ राज्य के मुकाबिले में एकदम भी ठहरसक्ते ? क्या भूलगये कि जिस समय देश तथा जाति रक्षा के अर्थ धन की आवश्यकता हुई जापानियों ने अपने धन समर्पण में कैसा उत्साह दिखलाया था एक रुपिया मांगने पर दश आते थे। इसी प्रकार जिस समय उन से यह कहा गया कि देशरक्षाके वास्ते समुद्र में जहाजों पर डूबने कौन वीर पुरुष जाते हैं अपनी २ इच्छा प्रकट करैं। क्योंकि जापान के सभी पुत्र हैं किसी को बरबश नहीं कहा जाता। जो प्रसन्नतापूर्वक निज देश पर प्राण न्योछावर करना चाहते हों वह अपनी २ दरख्वास्तैं भेजैं। यह सुनतेही बात की बात में हजारों दरख्वास्तैं आगईं। जिन में विनय पूर्वक देशरक्षा के निमित्त प्राण देने को वीर जापानियों ने आज्ञा मांगी थी। कहते थे कि शरीर में हमारा क्या है सब तो देशही का है अन्न देश का, जल देश का

और वायु भी तो देशही की है इन्ही तीन पदार्थों से तो हमारा लोहू बना है उस को यदि हम देश रक्षा के निमित्त न बहादें तो हमको कोटिशः धिक्कार है। देश के हित प्राण देने से बढ़कर कोई भी नाम-वरी नहीं है। वीर जापानी कहते थे कि उसकी अहोभाग्य है जो जहाजों पर भेजा जायगा, जिस का शरीर देश रक्षा के काम आवेगा, वही ऋणसे उऋण होगा, वही अमर होजायगा। बहुतेरोंने जोश में आकर दरख्वास्तें अपने रक्त से लिखी थीं और लिखा था कि इस से बढ़कर हम क्या साक्षी देसक्ते हैं, कि देशरक्षा के निमित्त प्राण देने से बढ़कर हम संसार में कोई वस्तु नहीं समझते, हमारे अफसरों को उचित है कि हमारा हौंसिला पूरा कर लेने दें।

वह घटना भी स्मरणीय है जब लोहे के भालों से बनाहुआ गढ़ जापानी फौज को नाघना था। रणक्षेत्र के सब मृतक शरीर एक-त्रित करके ढेर लगादियेगये। इस विचार से कि उन्हीं पर होकर फौज नांघ जावै परंतु जब मुर्दे पूरे न परे तब घायल वीर जो उठने की सामर्थ्य रखते थे उठ २ कर स्वेच्छानुसार लेटगये, जो उठ नहीं सक्ते थे उन्होंने चिल्ला २ कर कहा, प्यारे भाइयो! शत्रुओं को पीठ दिखा कर जापान का नाम न रखाना हम को भालों पर लेटा दो, उसपर से आनन्द पूर्वक चले जाओ, जब तुम विजयका डंका बजा-ओगे तब हमारी आत्मा स्वर्ग में भी आनन्दित होगी। यहां तक कि जहां २ कमी थी हट्टे कट्टे सिपाही लेटगये भाले चुभ २ कर शरीर के उसपार निकल गये परंतु देशरक्षा से मुंह न मोड़ा।

वहीं की एक अनाथ बुढ़िया का हाल है कि जब सुना कि देश पर संकट पड़ा है मनुष्य देशरक्षा को जा रहे हैं अपने एकलौते बेटे से कहा कि पुत्र! तू भी जाकर देशरक्षा में सहायता कर। माता

की आज्ञानुसार पुत्र फौज में गया परन्तु जब अफसरोंको यह मालूम हुआ कि वह अपनी मा का अकेलाही बेटा है, तब उन्हों ने कहा ऐसा मनुष्य फौज में नहीं लिया जासक्ता। क्योंकि उसके मर जाने पर वृद्ध माता की सेवा करनेवाला कोई न रहेगा। जब वह मनुष्य फौज में न लिया गया, वापस आया माता ने लौट आने का कारण पूछा। और जब उसे यह ज्ञात हुआ कि वृद्ध माताही उसके देशकी सहायता को न जाने की आज्ञा पाने का कारण है। मा ने कहा बेटा मैं वृद्ध हुई मुझ से अब देश का हित क्या हो सक्ता है खेदहै कि मेरे होने से देश सहायता में हानि हो रहीहै, यह महापाप किस से झेला जायगा। यह कहकर पेट में खंजर मार लिया और कहा बेटा! मैं तो अब स्वर्गको पयान करतीहूं तू निर्द्वन्द्व होकर देशकी रक्षा कर। यह बात भारत के प्रत्येक समाचार पत्र तथा उनके देखने वाले भलीभांति जानते हैं। जो देश उन्नत हैं उनकी प्रजा आत्म समर्पण को देश के सामने कोई बस्तु नहीं समझती।

यही हाल सम्पूर्ण भारतबासियों का था यह देश संसार के सब देशों से सब बातों में बढ़ा चढ़ा था, चारो बर्णों के कर्त्तव्य पृथक् २ थे परन्तु सबका सम्बन्ध एक दूसरे से उसी भांति था जैसे शरीर का उस के सब अंगों और इन्द्रियों से होता है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या꣡ꣳ शूद्रोअजायत।
यजुः अ० ३१ मं० ११॥

"ब्राह्मण उसका शिर है, क्षत्रिय उसकी भुजा बनाये गये हैं, जो

वैश्य हैं वह उसकी जंघा हैं, और शूद्र उसके पांव बनाये गये हैं" यजुः मं० ९ में देश तथा मनुष्य जाति पुरुष रूप से बर्णन किया है। मंत्र १० में यह प्रश्न किया गया है कि उस पुरुष के अंग क्या हैं उसका शिर भुजा इत्यादि क्या हैं। मन्त्र ११ में उत्तर दिया गया है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र क्रम से उसके शिर भुजा जंघा और पांव हैं। इसका तात्पर्य यह है कि देश तथा मनुष्य जातिको अपनाही अंग समझना चाहिये। जो सम्वन्ध अपने शरीर को उसके अंगों (शिर भुजा जंघादि) से है वही सम्वन्ध सर्व वर्णों (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यादि) का मनुष्य जाति तथा देश से है। जिस प्रकार शरीरोन्नति प्रत्येक अंग के पृथक् २ कर्मों के यथावत् साधन पर निर्भर है उसी प्रकार देशोन्नति प्रत्येक वर्ण के निज २ कर्तव्य साधन ही पर निर्भर है। जिस प्रकार शरीर के अंग बाहर से पृथक् और अन्दर से ऐक्यभाव रखते हैं, तभी उन्नति होती है। उसी प्रकार चारो वर्ण निज २ कर्तव्य पालन करते हुए जब अंतःकरण से ऐक्यभाव रक्खेंगे तभी उन्नति हो सक्ती है।

जिस प्रकार शरीर में शिर सब ज्ञानेन्द्रियों और मस्तिष्क का आधार है वैसेही भारतमें ब्राह्मण ज्ञान और विद्या के आधार थे। और जैसे शरीर में मस्तिष्क सब अंगों और अवयवों को चलाता है और प्रत्येक को अपने काम में लगाता है वैसेही भारत में ब्राह्मण सब वर्णों को अपने २ काम में लगाते थे और अपने उपदेशों से सब को अपने २ धर्म पर आरूढ़ करते थे। और जिस प्रकार शिर में जिह्वा का काम बोलना और उपदेश करना है इसी प्रकार भारत में ब्राह्मणों का मुख्य कर्म पढ़ना, पढ़ाना और उपदेश करना था। और जैसे शरीर में शिर सब से उच्च और श्रेष्ठ है उसी प्रकार

ब्राह्मण भारत के सर्व वर्णों में उच्च और श्रेष्ठ थे। इसी प्रकार क्षत्रिय वर्ण भारत की भुजा थे भुजाओं का काम सारे शरीर की रक्षा करने का है इसी कारण वीर क्षत्रिय भारत रक्षा में, धर्म रक्षा में, गो ब्राह्मण रक्षा में, व्यापारादि की रक्षा में तथा भारत की सर्वस्व रक्षा में तन, मन, धन, न्योछावर करते थे। वैश्यों को ऊरू वर्णन किया है ऊरू शब्द के दो अर्थ हैं उदर वा जंघा, दोनों अर्थों से एकही तात्पर्य्य निकलता है। उदर का काम है कि भोजन को पचाकर समस्त शरीर के पोषणार्थ रस पहुँचावै। वैसेही प्राचीन काल में वैश्य लोग खेती द्वारा अन्न उत्पन्न करते थे और वाणिज्य व्यापार द्वारा सब भारत बासियों को अन्न तथा और आवश्यक वस्तुयें पहुँचाते थे। और जिस तरह जंघा के बल से शरीर चलता फिरता है एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है उसीप्रकार भारत की जंघा वैश्य लोग थे। जो वाणिज्य व्यापार के निमित्त देशदेशांतरों को जाते थे, गो रक्षा करते थे और देश को धन से सम्पन्न रखते थे। उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा शूद्र करते थे यह विद्यारहित होनेके कारण द्विजों के कर्म नहीं कर सक्ते थे। शरीरकी सेवा चल फिर कर जिस तरह पैर करते हैं उसी तरह भारत के द्विजों की सेवा शूद्र करते थे।

चारो वर्णों की प्रतिष्ठा भी उनके कर्मानुसार थी विद्या, बल, धन, सेवा, इन चारो में विद्या श्रेष्ठ है क्योंकि विद्या के बिना बल और धन कुछ काम नहीं कर सक्ते। इसी कारण विद्वान सर्व श्रेष्ट माने जाते थे। विद्याकी अपेक्षा बल नीचे दर्जे का है परंतु धन से श्रेष्टहै क्योंकि बल से धन प्राप्त हो सक्ता है इस कारण बलवान् दूसरे दर्जे पर और धनवान् तीसरे दर्जे पर रक्खे गए थे।

कुछ २ महानुभावोंका मतहै कि यजुर्वेद अध्याय ३१ मंत्र ११ में जगत् पिता के शरीर का वर्णन है किसी देश या जाति का रूपक नहीं है यद्यपि बात वैसी ही है जैसा कि मैं वर्णन कर चुका हूं और भली भांति उक्त मंत्र से सिद्ध की जासक्ती है । तदपि इस समय एकता के लेख में अनैक्यता की बात न छेड़कर मैं केवल इतनाही कहना चाहता हूं कि भाइयो ! मानो चाहे जिस तरहसे। केवल यह बात स्मरण रक्खो कि चारो वर्णों में सम्बन्ध उसी प्रकारका है जैसा कि शरीर और उसके अंग-शिर बाहु जंघादिमेंहै । चाहे हम सब भारत वासी जगत्पिता के नामसे एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हैं, चाहे देश के नाम से, और चाहे मनुष्य जाति के नाम से, सब का तात्पर्य यही है कि हम सबमें सम्बन्ध वैसाही है जैसाकि शिर बाहु जंघादि का शरीर से है अतः जब बाहर से पृथक् २ अपने कर्त्तव्य को करते हुए अन्तःकरणमें एक भाव रखकर शरीर की इंद्रियों की नाईं स्वार्थ साधन परार्थ में करेंगे तभी उन्नति होगी, तभी सुख होगा, तभी कल्याण होगा, तभी सुफलता होगी ।

कर्तव्य चिन्तन ।

गत लेख से भली भांति स्पष्ट हो चुका कि हम सबका सम्बन्ध प्रत्येक भाईसे तथा समस्त देश भाइयों से क्याहै । परन्तु यदि भार एक बार ही उठाना चाहैं, सब सुधार एक बारही करना चाहैं, उन्नति के शिखर पर एकबारगी कूद जाना चाहैं, तो अति दुस्तर है । वह तभी हो सक्ता था जब कोई अपने धर्म का राजा हम पर होता, अथवा कोई राजकीय शासन हम पर होता कि जो अपने कर्त्तव्य को पालन न करैंगे, स्वधर्म पर न चलैंगे, तो दण्डनीय होंगे ।

वहतो कुछहैही नहीं, अब तो घरजानी मनमानी का मामला है। अतः आवश्यक होता है कि प्रथम प्रत्येक वर्ण पृथक् २ सुधार की ओर कटिवद्ध हों और यहांतक सफलता करके तब आगे बढ़ैं। नहीं २ मैं भूलगया। कुल की उन्नातिकी बात कहते हुए थोड़े में मेरा भी हाथ नहीं पड़ता। वास्तव में यह बात भी बड़ी है प्रथम प्रत्येक वर्ण का प्रत्येक विभाग, अथवा प्रत्येक विभाग का प्रत्येक कुल, अथवा प्रत्येक कुलका प्रत्येक घर, अथवा प्रत्येक घरका प्रत्येक व्यक्ति, क्रमशः अनुष्ठान करैं धीरे २ करता जावे सफलता अवश्य होगी।

सब से मुख्य और सबसे पहिला हमारा कर्त्तव्य परस्पर मेल और सहायता का है। वर्त्तमान समय में यह कार्य जाति सभाओं द्वारा बड़ी सरलता से होसक्ता है। जिनके अधिवेशन में सब भाई एकत्रित होकर, एक दूसरे से परस्पर मिलें, हितवार्ता करैं, जाति सुधार तथा उन्नति के उचित उपाय सोचें। जिन भाइयों के हृदय में अविद्या का अन्धकार है स्वयं अपना भला बुरा नहीं पहिचान सक्ते वह सभा के सभ्यों के उपदेशों पर ध्यान दें। सभा के नियमों के अनुसार करने का प्रण करैं, सभा के विचारानुसार कुरीतियों को त्यागने, और सुरीतियों को ग्रहण करने की जी में ठानलें। और जो २ शुभ कार्य होतेजावैं अथवा कुरीतियों का नाश करते जावैं वह सब समाचार, सभा के सुविचारों सहित जातीय समाचारपत्र द्वारा सब भाइयों को विदित करदिया करैं, जिसमें अन्य जातीय सभाओं तथा भाइयों को सफलता की सूचना होतीरहै, जिसको पढ़ २ या सुन २ कर जो भाई पिछले हुए हैं, देखादेखी आगे बढ़ने का उत्साह करैं।

बड़े हर्ष का विषय है कि वैश्यमहासभाने अवतार लेकर

सम्पूर्ण वैश्य जाति के सुधार का दत्त चित्त से प्रयत्न किया है। परन्तु स्मरण रहै कि यह कार्य बहुत बड़ा है यदि हमारे वैश्य वर्ण के सब विभाग स्थानीयसभायें स्थापित करके उक्त सभाकी सहायता करने लगैं तो यही वृहत्कार्य अति सुगम होजाय। कहावत है कि-

"सात पाँच की लाठी एक जनेका बोझ"

जो भार अभी अकेली वैश्य महासभा पर है वह स्थानीय सैकड़ों सभाओं में विभाजित होकर इतना सरल होसक्ता है कि सब अपने २ कर्तव्य को सुगमता से करके शीघ्रही सम्पूर्ण जाति का उद्धार करसक्ते हैं। और ऐसा करने की आवश्यकता भी विदित होती है। क्योंकि मनुष्य एक प्रकार के नहीं होते इसी प्रकार सब वैश्य जाति को एकही प्रकार के सुधार की आवश्यकता नहीं है। किसी में कोई कुरीति है, किसी में वह नहीं है और कोई दूसरी है, सब के आचार व्यवहार पृथक् २ स्थानों में वास के कारण एक नहीं हैं। अतः प्रत्येक वैश्य जाति को उचित है कि अपनी अपनी सभायें स्थापित करके जैसा कि अगरवाल, गोलवार, माहौर, और वाथम आदि ने किया है अपनी २ विशेष कुरीतियों को स्वयं विचार कर नष्ट करदें, समय और स्थानानुसार सुधार का प्रयत्नकरैं। और जो सुधार सम्पूर्ण वैश्य वर्ण के निमित्त उपयोगी हैं उन सबका विचार गम्भीरता तथा दूरदर्शिता से देश, काल,अवस्था, स्थिति, योग्यता तथा सम्पूर्ण वैश्य जाति की बाहरी भीतरी सब बातों पर लक्ष्य देकर वैश्य महासभा के वार्षिक अधिवेशन में आ आ कर सब भाई अथवा सब स्थानीय सभाओं के प्रतिनिधि प्रकट किया करैं। और सर्व सम्मति से जो बातें तै हो जावें, उसी के अनुसार सब स्थानीय सभा

करने तथा कराने का उद्योग करैं और वैश्यमहासभा से उपदेशक भेज २ कर सुन्दर २ उपदेशों से जाति का सुधार करने का प्रयत्न किया जावै। केवल बातोंही की भरमार से कुछ नहीं होसक्ता। कुछ करना और करदिखाना सब भाइयों का मुख्य कर्त्तव्य है। ऐसा करने से बड़े २ लाभ होने की सम्भावना है। जो जातीय सभायें अपने कर्त्तव्य को इस समय न करके शिथिल हो रही हैं, वह परस्पर द्वितीय जातीयसभाओं तथा वैश्यमहासभा के सम्वन्ध से देखादेखी अपने २ कर्त्तव्य को पालन करने लगैंगी। और प्रत्येक अपना काम प्रति वर्ष वैश्यमहासभा में एक दूसरे से बढ़कर दिखाने का उत्साह करैंगी। और इस समय जो उपदेशक लोग प्लेटफारमोंपर खड़े होहो कर रोते हैं। "हाय हम ऐसे थे, हाय हम वैसे थे, हाय हम उच्च थे, हाय हम उन्नत थे, हाय हमारी सरवरि का कोई नहीं था, हाय २ यह क्या हुआ, यह देखो धर्म कर्म छूट गये, यह देखो पतित होगये, यह देखो रसातल को चले जारहेहैं" इत्यादि २ बातें अब और न सुन मिलेंगी। प्रत्येक सभाके प्रतिनिधि खड़े हो हो कर सुनावैंगे "देखो हमारी सभा ने गतवर्ष इतने शुभ कार्य किये, इतने दीन भाइयों को सहायता दी, इतने बालकों के संस्कार कराए, इतनी दीन भाइयोंकी कन्याओंके विवाह कराये, इतनी विधवाओंको भरण पोषण में सहायता दी, इतने विद्यार्थियों को पाठशाला भेजा, इतनी आर्थिक सहायता भाइयों से मिली, जिस में से इतनी स्थानीय सभा में खरच हुई, और इतनीसे वैश्यमहासभाकी सहायता की गई, और इतनी बचत मौजूद है" एक से एक उत्साही पुरुषों की कार्यवाही एक से एक बढ़कर सुनने में आवैगी। यह सुन सुन कर पाषाण हृदय भी पसीज उठैंगे। कोई माई का लाल उठकर सभा में यह प्रतिज्ञा

करता दिखाई देगा कि हम सभाका उत्साह बढ़ाने और जाति सुधार के अर्थ इतना धन देते हैं । कोई उसकी देखादेखी उससे भी बढ़कर दान करेगा । जो कुल कुठार हैं, जिनको जाति की चिन्ता स्वप्नमें भी नहींहै वह भी देख देख कर लज्जित हो हो कर देखादेखी कुछ न कुछ दान अवश्य करैंगे । जिन भाइयों के पास विशेष धन नहीं है, परन्तु हौसिला विशेष सहायता करनेका है, वह वीर पुरुष छाती ठोक २ कर सभामें भुजा उठा २ कर प्रण करते देख पड़ेंगे, कि हमने अपना सारा जीवन सभा को दे दिया । अब जो कुछ यह शरीर करैगा, सब सभाही के अर्थ करैगा । जाति सुधारहीमें लव लावैगा। इस प्रकार अनेकानेक आनरेरी उपदेशक, सहायक तथा कर्मचारी सभा की सहायता में कटिबद्ध हो जाति का उद्धार करेंगे ।

हमारा दूसरा कर्त्तव्य उपर्युक्त सभाओं को आर्थिक सहायतासे पालन करना है—यह भी वैश्य भाइयों से आशा करना कोई बड़ी बात नहीं है । क्योंकि केवल दिल्लीमहामण्डल में वैश्यों की दोसौ से अधिक जातियां हैं । और प्रत्येक जाति में न्यूनाधिक ५०, ५०, कुल हैं । और प्रत्येक कुल में अनेकानेक घर हैं । यदि प्रत्येक कुल में केवल १० ही १० घरोंका औसत लगाया जाय और प्रत्येक घर में ५ प्राणियों का औसत माना जाय, तो भी संख्या ५० हजार पहुँचती है । यदि प्रत्येक मनुष्य महीने में एक पैसा भी वैश्य महा सभा के अर्थ अर्पण करै, तो साल में ९,३७५) रुपये की सहायता उक्त महासभा को पहुँच सक्ती है । परन्तु वैश्यभाइयों में बहुत से धनी मानी पुरुष हैं, बहुत से प्रसिद्ध सेठ साहूकार तथा प्रसिद्ध व्यापारी हैं, जो पैसा देने के स्थान में यदि अशर्फी महीना अपनी जाति उद्धार के अर्थ जाति माता को प्रदान करैं तो कुछ बड़ी बात नहीं है । बहुत से भाई राज्य में उत्तम २ पदों पर सुशोभित हैं,

तथा विद्वान और वकील हैं, यदि यह लोग अपने चित्त में प्रबन्ध करने की ठान लें, तो सब कुछ कर सक्ते हैं । इसके अतिरिक्त सर्व साधारण भाइयों में काम काज हुआ करते हैं, सैकड़ों रुपयों का अपव्यय (नाचरंग तमाशादि) होजाता है । यदि इस अपव्यय का चतुर्थांश भी जाति सभा के अर्थ (जिस पर उन की और उन के बाल बच्चों की उन्नति निर्भर है) अर्पण करदिया करैं, तो कोई बड़ी बात नहीं है । परन्तु यदि यह सब धन एकत्रित होकर जाति सुधार में लगै, तो एकता के प्रभाव से जैसा कि पृष्ठ ६ में वर्णन करचुके हैं इसकी शक्ति कई गुनी बढ़ जावैगी । अपरिमित जाति-हित होगा, जिस से बहुत शीघ्र उन्नति की आशा की जा सक्ती है ।

हमारे भाइयों तथा जातीय सभाओं को सृष्टिक्रम तथा प्रकृति माता से शिक्षा लेनी चाहिये । देखो जितना जल पृथ्वी पर बरसता है सबका सब पृथ्वी स्वयंही नहीं पी लेती, किन्तु अपने काम भर को लेकर शेष नालों को पहुंचा देती है, नाले अपने काम भर को लेने के पश्चात् नदियों को पहुँचा देते हैं, इसी नियम से नदियां भी समुद्र को पहुँचाती रहती हैं, समुद्र फिर उसको सूर्य की सहायता से भाप बनाकर वायु मण्डल द्वारा उन्हीं स्थानों पर भेजदेता है जहां से वह आया था । इसी प्रकार जाति भाइयों द्वारा जो सहायता स्थानीय सभाओं को मिलेगी, और स्थानीय सभाओं द्वारा जो सहायता वैश्य महासभा को पहुँचाई जावेगी, वह सब विद्या के सूर्य की सहायता से उपदेशकों, व समाचारपत्रों तथा सुविचारों द्वारा द्वितीय रूप से फिर जाति भाइयों ही के अर्थ लगैगी । उसी से कल्याण होगा । वही उन्नति साधन में सफलता देगी ।

भाइयो ! सोचने की बात है, यदि सब का सब पानी पृथ्वी

ही पीजाय, नदी नाले समुद्र इत्यादि को सूखाही छोड़दे, तो क्या इससे पृथ्वी की उन्नति होसक्ती है ? क्या दूसरे साल फिर नया जल पाने की सम्भावना करसक्ती है ? तो फिर क्या अपना जीवन सुख से बितासक्ती है ? कदापि नहीं। कदापि नहीं। कदापि नहीं।

अतः भाइयो ! जब से चेतो तभी से सही अब कुछ संभलो, नहीं तो वंश रसातल को जारहा है, अबकी बिगड़ी फिर सुधारने में लोह लगजायगी। जो भाई प्रायः कहने लगते हैं कि देने का हम से नाम न लो, हमने "द" अक्षर पढ़ाही नहीं उन से मेरी यह विनय है कि किंचित् सृष्टिक्रम में देखलें जो २ पदार्थ देना नहीं जानते हैं उनकी क्या दशा होती है। संसार में प्रायः जितने रंग हैं सब का कारण सूर्य भगवान हैं, जिनकी सातोरंग की किरणैं संसार के सब पदार्थों पर पड़ती हैं। जो पदार्थ जितने रंगकी किरणैं खा जाता है वह उस को प्रकृति के नियमानुसार हजम हो जाती हैं। और जिन २ रंगों की किरणैं वापस देता है सृष्टि के नियमानुसार उसको वही रंग मिलता है। यह साइन्स के जाननेवाले भली भांति जानते हैं कि पदार्थों में स्वतः रंग कुछ भी नहीं है, जो रंग दृष्टि को देख पड़ता है वह वही रंगहै जिसको उस पदार्थ ने ग्रहण न करके लौटा दिया है। जो पदार्थ लाल रंग के देख पड़ते हैं उन्हों ने शेष छा रंगों से अपना अर्थ बनाया और लाल रंग प्रकृति को अर्पण किया, इसी कारण प्रकृति माता ने उसको फिर उसी रंग से सुशोभित कर दिया, जो रंग खाये थ उनको कोई नहीं देखता, जो दियाथा उसीसे अपना रंग पाया, उसी से गौरव मिला। इसी प्रकार जिन पदार्थों ने सब के सब रंग खा लिये, उनको प्रकृति माता ने कोई रंग न देकर सदा के लिये मुंह काला कर दिया। और जिन पदार्थों ने जो पाया, उस

में से कुछ भी न लिया, सातों के सातों दे दिये, वही निर्मल बनाये गये, वही स्वच्छ हैं,वही श्वेतहैं, वही सूर्यवत् देदीप्यमानहैं । अतः हे भाइयो ! यदि सदा के लिये इस संसार में मुंह काला करना हो, जाति में मुंह न दिखाना हो, तो जो मनभावे सो करो, नहीं तो सृष्टिमें मनुष्यसे लेकर जड़ पदार्थोंतक चाहै जिससे शिक्षा ग्रहण करो।

पिबन्ति नद्यःस्वयमेवनोदकं स्वयन्नखादन्ति फलानिवृक्षाः । धाराधरोवर्षतिनात्महेतवेपरो पकाराय सताम्विभूतयः ॥

सुभा० र० भा० पृ० ५१ श्लोक १७०

"नदियां अपना जल स्वयं नहीं पी जातीं, वृक्ष अपने फलोंको स्वयं ही नहीं खा जाते, मेघ जलको अपनेही निमित्त नहीं बरसते, किन्तु सब के उपकारार्थ ऐसा करते हैं इसी प्रकार सज्जन पुरुषों के पास जो कुछ विभूति होती है सब परोपकारही के अर्थ होती है"

प्यारे भाइयो ! सभा स्थापन कर उसके नियमोंका पालन करना और उसकी रक्षा करने के अतिरिक्त हमारा तीसरा कर्त्तव्य अपनी जाति का ज्ञान करना है क्योंकि--

**आचारेव्यवहारेच प्रायश्चित्ते विशेषतः ।
ज्ञात्वा ज्ञातिविवेकंच द्विजःपूज्यत्वमर्हाति ॥**

" धर्म शास्त्रके आचार और व्यवहार प्रायश्चित्त इनके निर्णयों के निमित द्विजको अपनी जाति का ज्ञान करना परमावश्यकहै । ऐसा करने से वह द्विज पूज्य अर्थात् माननीय होता है" क्योंकि जब उसे यह बात ज्ञात होगी कि हमारी जाति क्याहै,हम क्या हैं, हमारा

आचार, व्यवहार, और सम्बन्ध कैसा है, और हम कर क्या रहे हैं, और हम हो क्या रहेहैं, तो अवश्यही सुधार का प्रयत्न करेगा। जैसे किसी बड़े आदमी का लड़का उपदेश न सुनता हो, निन्दित कर्म करता हो, और उसे डाट कर कहैं, कि वाह जी ! अमुक महाशय के बेटे होकर तुमको ऐसा करते लज्जा नहीं आती । ऐसे शब्द जो पिता के शुभ कर्मों का स्मरण दिलाते हुए कहे जाते हैं प्रायः हृदय पर बड़ाही असर करतेहैं । और मनुष्य को सुमार्गी बना देते हैं इसी प्रकार उन्नति की आवश्यकता का ज्ञान करनेके निमित्त हमारा कर्त्तव्य है कि ज्ञाति का ज्ञान करैं ॥

कार्यसाधन ।

कहिबो सुनिबो नहिं कठिन, करिबो बड़ो अपार।
पर जेते हैं सुजनजन, करत न लावैं बार ॥

वास्तव में कहना सुनना सोचना विचारना वैसा कठिन नहींहै, जैसा कि करना और कर दिखाना है । कर्त्तव्याचिन्तन से कुछ नहीं हो सक्ता, जब तक कार्यसाधन न किया जाय । अतः सब भाइयों को उचित है कि अब अपना २ कर्त्तव्यसाधन करैं । यदि कुछ करना है तो कर दिखावैं वृथा टांय २ फिस्स में क्या हंसी नहीं होती ? नाम नहीं धराजाता ? लज्जा नहीं आती ?

निज कर्त्तव्यहि छोड़ि नर, कर माले २ पछिताय।
काम बिगारे आपनो, जगमें होत हँसाय ॥

अतः हे देश शुभ चिन्तको, जाति हितैषियो, वैश्य भाइयो !

कर्त्तव्यचिन्तन करने के पश्चात् त्यागन न करके उसका साधनकरो क्योंकि अब सोचने का समय हो चुका, करने का शिर पर आया। आपकी सफलता में जो विलम्ब हो रहा है उसमें भाग्य बिचारी का दोष कुछ भी नहीं है। आप के कर्मोंही का दोष है। भाग्य आप के कर्मों से पृथक् नहीं है। आप भाग्यवान् न होते तो द्विजकुल में जन्मही न मिलता। भारत ऐसी पुण्यभूमि में जन्मही न होता। अपने हाथों अपने कर्मों को जान बूझकर सत्यानाश न करो। वृथा कलियुग पर अपराध मत रक्खो। जो इसे कलियुग कहते हैं उन का भ्रम है।

कलयुग नहीं करयुगहै यह, करके तजर्बा देखलो।
क्या खूब सौदा नक्द है, इसहाथदो उसहाथलो॥

भाइयो! विचारो तो सही आपसे करने ही को क्या कहा जाता है। सभी भार तो सभा पर डाल दिया गया। रहा उसकी रक्षा करना, वह भी कुछ डांड़बांध नहींहै मन में आवै करना, न मन में आवै न सही। अभी वंश निर्वीर्य नहीं है, बहुत से माई के लाल पड़े हैं, जो जातिमाता (सभा) की रक्षा के अर्थ धन देना कितनी बड़ी बात है, प्राण भी दे सक्ते हैं। अब रहा सभा के उपदेशों को सुनना, उस में तो पिछड़ना न चाहिये। उत्तम २ उपदेश सुनने को मिलेंगे, और अनेकानेक विद्वान, धनवान, और प्रतिष्ठावान भाइयों से परिचय घाते में होगी। जिन से मिलने से नमाळूम कितना और काम बन सक्ता है। इसके अतिरिक्त नेत्रों को सुन्दर २ दृश्य देख कर सुख होगा। भलीभांति जान जाओगे कि हमारी जाति भी कुछ है। वैश्यों में भी ऐसे २ प्रतिष्ठित पुरुष विद्यमान हैं जो वैश्य जाति

तथा वैश्यसभा के स्तम्भ हैं। रहा जातिज्ञान वह भी धीरे २ स्वतः होजायगा। जिस समय हृदय में जातिप्रेम होगा उस समय जातिज्ञान कर लिये बिना आप से रहाही न जायगा। जब किसी का कोई अतिशय प्रिय विदेश में होता है, उसकी कुशल मंगल जाने बिना रहाही नहीं जाता, सात समुद्रपार से समाचार मंगालिये जाते हैं। और जाति तो सदा आपके सामनेही है, उसके तो आप अंगही हो अतः प्यारे! उसकी उन्नति का बीड़ा उठाओ कर्त्तव्यसाधन में तत्पर होजाओ।

कुलकी उन्नति के लिये, जिन न उठायो भार।
ऐसे मूरख आलसिन, बार बार धिक्कार॥

जातिज्ञान।

बन्धुगण! जब यह ज्ञात हो चुका कि जाति ज्ञान करना हमारा कर्त्तव्य है। और जब यह भी विदित होचुका कि ऐसा करना हमारे जाति प्रेम को बढ़ाता तथा साक्षी देता है, और हमारी गणना जातिसहायकों में होती है। तो हम से मूर्ख और कौन है, जो इतने पर भी जातिज्ञान का प्रयत्न न करै। परन्तु कठिनता तो यह है कि जाति का विस्तार बड़ा है, और जातीयसमाचारसूचक पुस्तकों का अभाव है। यदि जाति के प्रत्येक विभाग के विद्वान इस ओर टुक ध्यान दें तो कोई बड़ी बात नहीं है। सब काम हाथोंहाथ हो जाय परन्तु यही काम यदि कोई एक मनुष्य करने का साहस करे तो अति कठिन है। जातिसम्बन्धी विषय बहुत सोच विचार कर, समझ बूझ कर, ग्रन्थोंको अवलोकन कर, विद्वानों और जाति के वृद्ध

और विचारवान् पुरुषों से सम्मति तथा सूचना लेकर, गम्भीरता तथा दूरदर्शिता से सब प्रकार पुष्ट कर के, लिखना तथा छापना उचित है । गड़बड़, सड़बड़, इधर उधर का अधूरा वृत्तान्त लिखना बड़ाही अन्याय है । क्यों कि यह तो एक प्रकार से जाति को धोखा देना तथा जाति भाइयों को बहकाना होता है । इसी कारण मैं ने जब तक सब ओर से जांच न लिया, अनेकानेक विद्वानों की सम्मति लेकर सब प्रकार देख भाल कर, और मिला कर ठीक न कर लिया, भाइयों की सेवा में जाति सम्बन्धी लेख प्रस्तुत करने का साहस न किया । इस कार्य के करने में मुझे कितने दिन लगे, कितना श्रम पड़ा, और कितनी कठिनता पड़ी, सब का कहना उचित न समझ कर केवल इतना ही कहता हूं, कि यदि अधूरा समाचार देना होता, बिना शिर पैर के किस्से कहानियों से जाति वर्णन करना होता, तो इस से चार पांच वर्ष प्रथम ही पुस्तक छप गई होती । परन्तु वह प्रामाणिक होती या न होती, इस को बन्धुवर आप स्वयं समझ सक्ते हैं ।

प्रथम इस के कि मैं इस विषय में कुछ और बात कहूं मुझे आवश्यक विदित होता है कि जाति भाइयों को दो चेतावनी करदूं । प्रथम यह कि जातिज्ञान के निमित्त जाति के सम्पूर्ण विभागों का जानना परमावश्यक है । दूसरे यह कि जिस विभाग का वर्णन किया जाय, उसके नाम, ग्राम, कुल, अल्ल, रीति, व्यवहार, इत्यादि सर्वाङ्ग का वर्णन सप्रमाण किया जाय । और जहां तक होसके यह कार्य उसी विभाग के प्रधान पुरुष को सौंपा जाय तो अति उत्तम होगा । बतौर नमूने के मैं वैश्य भाइयों की सेवा में यह लेख अर्पण करताहूं । प्रथम जाति विस्तार वर्णन कर के फिर उस के एक विशेष

विभाग (बाथम) का वर्णन किया है । आशा करताहूं कि इसी प्रकार सब भाई निज २ कुल के ज्ञानार्थ प्रयत्न करेंगे। मुझ तुच्छ बुद्धि से भी जो कुछ होसकैगा, यथामति सेवा को तैयार हूं। यदि मेरे उत्साह को सब वैश्य भाइयों ने इस पुस्तक को ग्रहण कर के बढ़ाया, तथा इसी के अनुसार शिक्षा ग्रहण करके सुधार का प्रयत्न किया, तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा ।

श्रीवैश्यवंश वर्णन ।

अगरवाल	गोरार जैनी	श्रीकठाडा
बाथम	चौडरिया	कखस्त
श्रीमाल	चुड़ेलवाल	कोहले
श्रीखण्ड	चाल	कारेगराया
श्रीगुरु	जानौरा	कारंटवाल
कुरदवाल	जोधपुरा	खण्डेलवाल
कमेइया	टिटोडा	खटौडा
कथार	डूसर	खडायते
कसवानी	दंमवास	गंगरवाल
खण्डेरे	दिल्लीवाल	गाहोई
खरुवा	नरासिया	गेजरा
गोंगवाल	नाड़िया नागर	गौलापुरा
गुंडल	नाछला	छींपी
गौलाड़	नौटिया	चितौड़ा
गौगधू	श्री श्रीमाल	चौसक्कां

जवूसरा	गौलसिघाड़े	गोलवड़न
जाइ	चौरडिया	गुरवार
जुईवाल	चक्कड़	गोलापूर्व
टंटरिया	चकचाप	चौरडिय
ढूसर	झालरा	चतुरथ
देहीवाल	डीडू	चित्तवाल
धकड़	तनवाल	जालौरा
नरसिंहपूर	दमौरा	जोजरा
नारनगरेसा	धवलकोष्टी	टगचाल
नागोरी	नराणिवाल	डिडउम्भर
पल्लीवाल	नागिन्द्रा	तरौडा
श्रीखण्डा	नेकधर्म्म	दिसावल
कठनेरा	दमावतियोर	नरराया
कपौला	श्रीगोंड	नवाभरा
कौनङ	कंकरिया	नाथचल्ला
कौमठी	कूसरया	नेमा
कसंवे	कंदोइया	पोरवान
खेड़वाल	कसारा	पसाया
खत्री	कसुवीवाल	पौहकनाल
गोइलवाल	खेमवाल	वेधरवाल
गोधराल	खण्डवस्त	बदनौरा
गंगराङा	गालवार	वालमीक
गेंदौड़िया	गौलाल	वैस

बोगार	बंभर	बड़ेला
माकरिया	भावसर	भांग
भुजपुरे	रंगारे	भटेरा
महति	महेश्वरी	मथुरिया
माइया	माटिया	मूरले
मोडेचातुर्वेद	मौड़माण्डल	रत्नकरा
राजिया	राजकुली	रायकवाल
लवेचू	लावणा	लाड
सहेलवाल	सडौइया	संवौधिया
सढ़	सिरोह्या	सुखडरा
सुरंद्रिया	सेतवाल	सेरिया
सोहिलकल	सौधितवाल	सौराण्डिया
सींहार	हरसौरा	हलदिया
हूमड़	अजमरा	अवकथवाल
अट्टसका	अहिछते	अष्टवार
ओमड़ा	औसवाल	अड्डवाल
उम्भर	उस्तवाल	भाटिया
पवाराछिया	पारख	पितादि
पौसरा	पञ्चम	पवाँड़ा
बरछवाल	बरभाका	वदवाइया
वदगूजरा	बैहरिया	बिरिमाका
वागड़िया	बाराहिया	बीजावरगी
वैसम्पायन	वेदवरगी	वेहड्या

भटनेरा	अजोधिया	मेवाड़िये
भृगङ्वाल	अस्तकी	रागौलापुरा
मत्तवाल	इन्द्रपुरा	रस्तंगी
मारेह	परवार	लौहिता
मेरतवाल	यौकर	सरावगी
राजपुरा	वरैया	सुनवानी
राजून्याती	बागौला	सौरठवाल
लिंगायत	विदिषाद्	सौरमियां
संगमर	बैराटिया	हाकरिया
सुरान	भवनगे	अडालिया
स्यौहारे	भूरला	अनन्दे
सोनेइया	भलिनधारे	उदपुरा
हरद	महागदे	

कुलज्ञान ।

वन्धुगण ! आपको स्मरण होगा, अभी जातिज्ञानसम्वधी लेख में यह निर्णय होचुका कि प्रथम जाति के सम्पूर्ण विभागों का जानना परमावश्यक है, जिसे आप श्रीवैश्यवंश वर्णन से भलीभांति विदित करचुके। अब आप का द्वितीय कर्तव्य कुलज्ञान का है। इसकी कितनी आवश्यकता है? और इससे क्या २ लाभ हैं? आप से बार२ कहने और अनावश्यक लेख बढ़ाने की आवश्यकता नहीं देख पड़ती। गतपृष्ठ २१ और पृष्ठ २४ से आप भलीभांति ज्ञातकर चुके। और आप स्वयं समझ सक्ते हैं कि अनेकानेक देशों तथा उन के राजाओं

का इतिहास, इङ्गलैण्ड और यूनान प्रभृति देशों के राजाओं के नाम तथा उन के राजशासन का वृत्त रटना सब व्यर्थ है, जब तक आप यही नहीं जानते कि हमारे बाप दादे कौन थे । इसीप्रकार समस्त भूमण्डल का भूगोल जानने से क्या हो सक्ता है, जब तक आप को इस बात का भी ज्ञान नहीं है, कि आप के बाप दादों का स्थान कहां है। आप के अमुक कुल तथा अल्ल का अमुक नाम क्यों पड़ा। आप के भाई कितने हैं और कहां २ पाये जाते हैं । उन के रीति व्यवहार आचार विचार कैसे थे, और अब क्या हो रहे हैं ।

"श्री वैश्यवंश वर्णन" में जितने कुल वर्णित हैं सब का ज्ञान करना उचित है । प्रत्येक भाई को चाहिये कि पृथक् २ अपने २ कुल ज्ञान करने का प्रयत्न करे । और यह कार्य्य प्रत्येक कुल का प्रधान पुरुष बड़ी उत्तमता से कर सक्ता है । अतः समस्त कुलों को पृथक् २ बर्णन करने का उद्योग नहीं किया गया, यहां केवल एक ही कुल का वर्णन करके नमूना दिखाया जाता है । आशा है कि इसी प्रकार प्रत्येक भाई अपने २ कुल की वंशावली बना लेने का उत्साह प्रकट करेंगे ।

"श्री वैश्यवंश वर्णन" में सब से प्रथम "अगरवाल" शब्द है इस कुल की वंशावली उत्साही अगरवाल भाइयों ने बनाई है। उस के पश्चात् "वाथम" शब्द है उसी पर आज हम विचार करते हैं।

वाथम व्यवस्था विधान।

किसी कुल को वर्णन करने के प्रथम उस की व्युत्पत्ति जाननी परमावश्यक है क्यों कि जब तक यही नहीं ज्ञात है कि उस कुल ने किस गुण तथा कर्म के कारण वह नाम पाया तब तक उस कुलो

त्पन्न भाइयों के गुण, कर्म, रीति, व्यवहार, आचार, विचार, का पूरा पता मिलना सुगम नहीं है, परन्तु कठिनता तो यह है कि अपने यहां ऐतिहासिक पुस्तकों का ठीक २ पता नहीं चलता, और इसी कारण किसी बात के ऐतिहासिक अन्वेषण में बड़ा परिश्रम पड़ता है। अधिक पता इस बात से चलता है कि अधिकांश संस्कृत के शब्द सार्थक हुआ करते हैं। कुल हो या कोई विशेष व्यक्ति प्रायः नाम उस के गुण तथा धर्म कर्मानुसार हुआ करते हैं, और कभी २ स्थान में वास करने के कारण भी विशेष नाम पड़ जाता है।

अतः यदि किसी शब्द की व्युत्पत्ति का पूरा पता लगाना हो तो चाहिये कि सब ओर से जांच परताल करले। बहुत से शब्द ऐसे भी हैं जिनका शुद्ध रूप संस्कृत का और है परन्तु भाषा बोल चाल में अपभ्रंश हो गया है, इस दशा में यह बात देखना चाहिये कि उस के कर्म, धर्म, गुण, इत्यादि उस कुल से मिलते हैं, जिस से उसका सम्बन्ध चलता है।

उपरोक्त बातों पर लक्ष्य देकर "वाथम" शब्द व्यवस्था में मुझे जितनी लिखापढ़ी पड़ी है और जितना श्रम पुस्तकें तलाश कराने, दिखाने तथा उत्तम २ विद्वानों की सम्मति लेने में पड़ा है, अपने कार्य्य में सफलता देख कर उस मैं कुछ भी अनुभव नहीं करता हूं किन्तु दूने उत्साह के साथ आनन्द पूर्वक "वाथम" भाइयों की सेवा में निम्न लिखित व्यवस्था भेट करता हूं, अपने मुंह इस की प्रशंसा न करके इस के प्रामाणिक होने में केवल यही बात कहता हूं कि व्याकरणप्रमाण से, युक्तिप्रमाण से, और लेखप्रमाण से सब प्रकार वाथमशब्दव्यवस्था वैश्यकर्मसूचक विदित है, जो जिस प्रकार चाहै अपना मन भरले।

(व्याकरणसे)

वागतौ । ष्ठा (स्था) स्थितौ वातितिष्ठति यत्कुलं स्थितिशीलंगमनशीलञ्चयत्कुलं तद्वास्थम् पृषोदरादित्वात्सलोपेवाथम् वैश्यानां व्यवहारादौ-गमनं, क्रयविक्रयार्थस्थितिश्च, धर्मः अतः वैश्यार्थसूचकोऽयं शब्दः सुतराम्भवितुमर्हति

वा धातु का अर्थ है गति करना (चलना), स्था धातु का अर्थ ठहरना है, इन्ही दोनों धातुओं के संयोग से वास्थम् हुआ, फिर पृषो-दरादि में होने से सकार का लोप होकर "वाथम" शब्द बना अर्थात् जो कुल चलता हो और ठहरता भी हो अथवा स्थिति शील हो और गमन शील भी हो, उसको "वाथम" कहैंगे । वैश्यों का व्यापार के निमित्त (देशदेशान्तरों में) जाना और (पदार्थों के) क्रय विक्रय के अर्थ (किसी २ स्थान पर) ठहरना धर्म है इस कारण यह शब्द वैश्यार्थ सूचक है ।

अन्यच्च

वातीतिवाः तिष्ठतीतिस्थःवाश्चस्थश्चवास्थौ, वास्थौ माति इति वास्थमः पृषोदरादित्वात्स लोपे वाथमः

वाः=वहिर्वाणिज्य द्रव्य (अशियाय रफ्तनी) (इक्स पोर्ट)

स्थः=अन्तर्वाणिज्य द्रव्य (अशियाय आमदनी) (इम्पोर्ट)

मा: = तौलनेवाला (व्यापार करनेवाला)
जो वाणिज्य के निमित्त वहिर्वाणिज्यद्रव्य और अन्तर्वाणिज्यद्रव्य का व्यापार करै वह वाथम है ॥

अन्यच्च

वार्षुतिष्ठतियत्कुलं (वाणिज्यार्थनौकादौस्थित्वाव्यवहारंकरोति) तद्वार्थम् तस्यापभ्रंशः वाथम् इति एतेनसमुद्रयानेन व्यवहारादिकं कुर्वंतिवैश्याः इत्ययमर्थः अस्माच्छद्वात्सूचितोभवति ।

जो कुल वारि (जल) में ठहरता हो अर्थात् वाणिज्य के निमित्त नौकादिकों में रहकर व्यवहार करता हो वह वार्थम् हुआ उसी का अपभ्रंश " वाथम " है वैश्यलोग समुद्र में ठहरकर जहाजों पर वणिज व्यापार करते हैं इस शब्द वाथम से भी यही अर्थ पाया जाता है ।

अन्यच्च

वास्तौ (वासगृहे) मा (लक्ष्मीः) यस्य स वास्तुमः तस्यापभ्रंशः वाथमः

वास्तु (गृह) और मा (लक्ष्मी) जिसके गृह में लक्ष्मी का वास हो अर्थात् जो कुल लक्ष्मीसम्पन्न हो वह वास्तुम हुआ इसी का अपभ्रंश वाथम है (अतः यह शब्द धनसम्पन्न वैश्यबोधक है)

अन्यच्च

बधसंयमने बाधयन्ति इन्द्रियाणि मांसभक्षणादौ ये ते बाधाः तेषां कुलं बाधम् तस्यापभ्रंशः 'वाथम' वैश्यास्तु वैष्णवधर्मानुयायिनः प्रायशोभवन्ति अहिंसकाश्च अयमप्यर्थः अस्माच्छब्दात्सूचितो भवति ।

बध धातु का अर्थ संयम करना है जो इन्द्रियों को मांस भक्षणादि कर्मों से बाधन करते हैं अर्थात् रोकते हैं उनके कुल को वाधम् कहेंगे उसी का अपभ्रंश वाथम है अतः यह शब्द वैष्णवधर्मप्रिय वैश्य बोधक है ।

(युक्तिप्रमाणसे)

विचारना चाहिये कि जिन शब्दोंसे यह वाथम शब्द सिद्ध किया गया उनसे वैश्य तथा वैश्य कर्म धर्म से क्या सम्बन्धहै ? वैश्य शब्द का क्या अर्थ है ? किस प्रकार वाथम शब्द का योग इससे है ? वैश्य कर्म शास्त्रानुसार क्याहै ? उनका वाथम कर्मोंसे किस प्रकार सम्बन्ध है ? इत्यादि २ ।

वैश्य शब्द विशधातु से बनता है जिसका अथ प्रवेश करना है अर्थात् देशान्तरों में जो वणिज व्यापार के अर्थ प्रवेश करते हैं अथवा क्षेत्रों में कृषि के निमित्त जो प्रवेश करते हैं वह वैश्य कहलाते हैं । वाथम व्यवस्थासे भी यही बात सिद्ध होती है कि जो व्यापार के निमित्त देशदेशान्तरों को जाता हो और पदार्थों के क्रयविक्रयार्थ

वहां ठहरता भी हो, अन्तर्वाणिज्यद्रव्य और वहिर्वाणिज्यद्रव्य का व्यापारी हो वह वाथम है ।

अब देखिये वैश्य कर्म, धर्म, शास्त्रानुसार क्या हैं ।

पशूनांरक्षणंदानमिज्याध्ययनमेवच ।
वणिक्पथं कुसीदञ्च वैश्यस्य कृषिमेवच ॥
मनु० अ० १ श्लो० ९०

पशु अर्थात् गाय बैल आदिकों का पालनकरना, दानदेना, यज्ञ करना, पढ़ना, वाणिज्य करना, व्याज की वृत्ति करना, खेती करना, ये वैश्य के कर्म हैं ॥

कृषिगोरक्षवाणिज्यंवैश्यकर्मस्वभावजम् ।
श्रीभग० गी० अ० १८

खेती, गौओं की रक्षा करना और वणिज व्यापार करना यह वैश्य का स्वाभाविक कर्म है ।

विशत्याशुपशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः ।
वेदाध्ययनसम्पन्नः सवैश्यइतिसंज्ञितः ॥
महाभार०शां०पर्व०अ०१८१

जिस की वुद्धि व्यवहार में शीघ्र प्रविष्ट हो और पशुओं से जो कृषि कर्म लेवै, शुद्ध रहे और वेद पढ़ा हुआ हो उसे वैश्य कहते हैं ।

लाभकर्मतथारत्नं गवाञ्च परिपालनम् ।
कृषिकर्मचवाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥
पाराशर अ० १ श्लो० १०

लाभ का काम, रत्नोंका व्यापार, गौओं का पालना, खेती और व्यापार ये वैश्य की वृत्ति कही है ॥

दानमध्ययनंवार्त्तायजनंचेतिवैविशः ।
अत्रिस्मृ०अ० १ श्लो० १५

दान देना, पढ़ना, खेती, गौओं की रक्षा, व्यवहार, यज्ञ करना ये वैश्य के कर्म हैं ॥

वाणिज्यंकर्षणञ्चैवगवाञ्चपरिपालनम् ।
विष्णुस्मृ० अ० ५ श्लो० १०५

वाणिज्य करना, कृषि, गोरक्षा करना ॥

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्योयथाविधि ।
दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानांच भोजनम् ॥
हारीतस्मृ० अ० २ श्लो० ६

गोरक्षा, खेती, व्यापार, इनको वैश्य यथाविधि करै, यथाशक्ति दान, और ब्राह्मण भोजन देवै-

सबका सारांश यह है कि वणिज व्यापार करना, क्रय विक्रयार्थ देशदेशान्तरों में आना जाना, ठहरना, कृषी, कुसीदादि करना, धन कमाना इत्यादि वैश्यों के कर्म थे।

अब वाथम शब्द व्यवस्था मिलाने से सब प्रकार की शंकाओं का समाधान हो जाताहै और मन उक्त व्यवस्थाको स्वभावतः ग्रहण कर लेता है। क्योंकि वैश्य शब्द व्युत्पत्ति तथा वैश्य धर्म कर्म इत्यादि सभी बातों से वाथम शब्द मिलता हुआ पाया जाता है। उस पर मोहर यहकि वाथम वैश्यों को जो प्रायः गुप्त लिखा करते हैं, और उनके पुरोहित लोग संकल्प में भी प्रतिवाथमनाम के अंत में गुप्त लगा लेते हैं। वह गुप्त शब्द भी गुप् धातु से बनाहै, जिस का अर्थ भी रक्षा करनाहै अर्थात् जो कृषि वाणिज्य गाय बैल इत्यादि का रक्षण करता हो, उसे गुप्त कहना चाहिये। मनु भगवान् भी अ० २ श्लो० ३२ में इस बात को पुष्ट करते हैं, कि गुप्त शब्द वैश्यों ही के नामान्त में होना चाहिये अतः वाथम शब्द के विषयमें अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं विदित होती

(लेख प्रमाण से)

परन्तु संसार में कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जिन से चाहे जैसी सारगर्भित बात कही जाय, उनका प्रश्न प्रायः यही होताहै कि इसका कहीं लेख भी है। ऐसे मनुष्यों से चाहै ऐसीही बात क्यों न कही जाय, जिसे वह स्वयं आँख से देखते हों तौ भी उसे मानने से सर हिलावैंगे और लेख में चाहै कोई कैसीही बुद्धि के विपरीत बात हो उसे आँख मूंद कर मान लेंगे।

आरम्भ में ऐक्यता का प्रण करके अब मैं यहां अनैक्यता नहीं लाया चाहता हूं। जो जिस तरह समझै उसको उसीतरह समझाने को तैयार हूं। सांच को आंच ही क्या है, खरे सोने को चाहै जिस तरह कसकर देख लीजिये, जो सत्य है वह सदाही सत्य है। अग्निपुराणान्तर्गत सत्यदेव कथानक अ० ३ श्लोक १९–२०–२१ में साधु साह का वाहुस्तम्भ (वाथम) होना भलीभांति स्पष्ट है। यह पुस्तक प्रिन्टिंग प्रेस लखनऊ में छपी है जो महानुभाव वाथमपदव्यवस्था में लेख प्रमाण चाहते हैं, उक्त पुस्तक मंगाकर अवलोकन करसक्ते हैं। यहां लेख बढ़ने के भय से प्रमाणों की गाथा न गाकर केवल इतनाही कहता हूं कि वाथमपदव्यवस्था में जिस को जिस प्रकार के प्रमाण से रुचि हो, व्याकरण से, युक्तिप्रमाण से, और लेख प्रमाण से अपना मन भरले सब प्रकार उक्त शब्द वैश्यार्थ बोधक है॥

वाथम वंश वर्णन।

विशेष कर इस वंश का स्थान कन्नौज है। वहीं से सारे पश्चिमोत्तर देश और अवधमें यह जाति फैल गई। और अब तो बड़ी २ दूर तक इस जाति के महानुभाओं ने पैज की है। परन्तु सब का पता कन्नौजही से चलता है। कन्नौज के राजा अजयपाल की राज्य के कालिन्द्री (काली) नदी के उस पार बहुत बड़े उजाड़ और जंगली भाग का सुप्रवंध करने और उसको धनधान्यसम्पन्न करने के प्रत्युपकार में उन लोगों को उक्त राज्य से चौबिस ग्राम, सातपुर, और दो नगर मिलेथे अतः उन लोगों के वंश उन्हीं स्थानों के नाम से कहे गये और बहुत से कुलों के नाम (अल्ल) जो जैसा व्यापार करता था उसी के सम्बंध से प्रसिद्ध हुए॥

नं०	अल्ल	कारण
१	विद्यावान	प्राचीन समय में विशेषतः विद्या में परिपूर्ण होनेके कारण.
२	चौधरी बांगरमऊ	राजा अजयपाल की ओर से बाँग रमऊ के इलाके के चौधरी होने के कारण । यह आज भी ताल्लुकेदार हैं.
३	सेठ	महाजनी और साहूकारी के कारण.
४	सराफ	सराफीका व्यवसाय करनेके कारण.
५	कुंडलेवार	कुण्डलादि आभूषण और रत्नों का व्यापार करने के कारण.
६	सुतहा	सूत का व्यापार करने के कारण
७	चैलहा	चैल अर्थात् कपड़ों का ,, ,, ,,
८	शिखिनहा	ऊन (पशमीना) का ,, ,, ,,
९	चिकनहा	चिकन का ,, ,, ,,
१०	पितरिहा	पीतल का ,, ,, ,,
११	मैदहा	मैदा का ,, ,, ,,
१२	चउरहा	चाउरका ,, ,, ,,
१३	खँड़हा	खांड़का ,, ,, ,,
१४	सिरहा	सीराका ,, ,, ,,
१५	तलिहा	तेल (इतर फुलेलादि) का ,, ,, ,,
१६	छकड़हा	छकड़ा (गाड़ी) का ,, ,, ,,
१७	धवलहा	धवल मकानादि की स्वच्छता व मरम्मत कराने के कारण

नं०	अल्ल	कारण
१८	कुलिनहा	पर्वत पर व्यापार करने के कारण.
१९	कांचबधा	कांच (झाड़ फन्नूस) का ,, ,, ,,
२०	घोड़चढ़ा	घोड़ों का व्यापार ,, ,, ,,
२१	पोस्तरी	पोस्ता (अफीम)का ,, ,, ,,
२२	ठेकेवाल	लकड़ी आदि का ,, ,, ,,
२३	अगरहा	अगर का ,, ,, ,,
२४	कबड़िहा	कबाड़ पुरानी वस्तुका ,, ,, ,,
२५	खँवरहा	खंव (अन्नादि की भड़सार) ,, ,, ,,
२६	जजियावाले	जजियाटैक्स जो बादशाहकी तरफ से वसूल करते थे अर्थात् राजकाज में प्रवन्ध करने के कारण
२७	खुशामदी	अधिक नम्रता के कारण
२८	श्रीलाल दासी	श्रीलालजी अर्थात् श्रीकृष्णजी के उपासक होने के कारण
२९	हिदायतनगरिया	हिदायत नगर में रहनेके कारण
३०	रहीमनगरिया	रहीमनगर ,, ,, ,,
३१	हयातपुरिया	हयातपुर ,, ,, ,,
३२	मुर्दारपुरिया	मुर्दारपुर ,, ,, ,,
३३	मंसूरपुरिया	मंसूरपुर ,, ,, ,,

नं०	अल्ल	कारण
३४	सद्दरपुरिया	सद्दरपुर में रहने के कारण
३५	बलपुरिया	बलपुर ” ”
३६	नसीरपुरिया	नसीरपुर ” ”
३७	सलेमपुरिया	सलेमपुर ” ”
३८	कुरसथहा	कुरसथग्राम ” ”
३९	पिड़हा	पिड़हीग्राम ” ”
४४	बैवहा	बैवग्राम ” ”
४१	नगरहा	नगरग्राम ” ”
४२	काल्पिहा	कल्पीग्राम ” ”
४३	बल्हौरिया	बल्हौरग्राम ” ”
४४	खंदरिया	खंदरिया ” ”
४५	अंटवावाले	अंटवाग्राम ” ”
४६	न्योतनीवाले	न्योतनी ” ”
४७	मुहानवाले	मुहान ” ”
४८	अजैयावाले	अजैया ” ”
४९	नयेगांववाले	नयागांव ” ”
५०	माधोगंजी	माधोगंज ” ”
५१	गौसगंजी	गौसगंज ” ”
५२	खरौवा	खरौवा ” ”
५३	सकूराबादी	सकूराबाद ” ”
५४	रोशनाबादी	रोशनाबाद ” ”
५५	रहीमाबादी	रहीमाबाद ” ”
५६	दरौलिहा	दरौली ” ”

नं०	अल्ल	कारण
५७	पौसरी	पौसरी में रहने के कारण
५८	अडौआ	अडौआ ,, ,,
५९	खंडरे	खंडवा ,, ,,
६०	अंटावाल	बहुत बड़ा अंटा बनाने के कारण.
६१ *	बाराहिला	इलाके कहली में बारह गांव थे अतः इस इलाकेवाले बराहिला कहलाये।

वाथमगोत्रवर्णन।

जिन २ महर्षियोंनें वैश्यों को यज्ञ करायेथे तथा शिक्षा दीक्षा-दीथी उन्ही के नाम से उनके गोत्र प्रसिद्ध हुये। सम्पूर्ण वाथम वैश्यों के गोत्र निम्न लिखित हैं।

कौशिक, कश्यप, वशिष्ठ, शाण्डिल्य, भरद्वाज, भृगु, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, गौतम, धनञ्जय, कपिल, पाराशर, वत्स, गर्ग.

*** इसके अतिरिक्त यदि कोई भाई वंशविषयक विशेष सूचना देने की कृपा करेंगे वह सहर्ष द्वितीय संस्करण में मुद्रित की जावेगी।**

अग्रिमविषयदर्शन ।

प्रिय पाठक ! जातिसुधार जातिउन्नति और जातिज्ञान का आवश्यक वर्णन संक्षेपतः समाप्त करके अब मैं आप का ध्यान व्यक्तीय सुधार की ओर आकर्षित करता हूं । भावी सन्तान वृहत्काय, सिंहकिशोरवत्पराक्रमी, ओजस्वी, पवित्र और सत्वसम्पन्न किस प्रकार होसक्ती है ? शारीरिक कुसंस्कार और पापरोगादि दोषों की निवृत्ति किस प्रकार सम्भव है ? आत्मा और मन में शान्ति, सुचेष्टा और विद्याधर्मादि गुणों के संग्रह करने का क्या उपाय है ? पुत्रों तथा पुत्रियों को कैसी और किस प्रकार से शिक्षा देनी चाहिये ? उनका आहार, विहार, साथ, संग, वस्त्र आभूषण इत्यादि कैसे होने चाहिये ! जिससे उनका शरीर आरोग्यता से शुद्ध और आत्मा सुविचारों से प्रकाशित रहे । कुरीतियां किस प्रकार कुलरीतियां होरही हैं ? वेद मन्त्रों के स्थान में नाना प्रकार के फूहड़ गीत, वेदध्वनि के स्थान में ढोल तासा और तबले की ध्वनि, पण्डितों के स्थान में भाँड़, भँडुये और रंडियां, और देवतों के स्थान में भूत, प्रेत, मदारबाबा, गाजीमियां किस प्रकार पूजेजाते हैं ? इसका कारण क्या है ? और निवारण क्योंकर होना चाहिये ? संस्कार क्या हैं ? उनका प्रयोजन क्या था ? उनके लोप का क्या कारण है ? वह किस प्रकार होने चाहिये ? द्विजमात्र को उपनयन की कैसी आवश्यकता है ? वर्त्तमान बड़े २ विद्वानों की इस बिषय पर क्या अनुमति है ? उपनयन का क्या माहात्म्य है ? ब्रह्मचर्य्य साधन और विद्याध्ययन का वह किस प्रकार एकमात्र आधार है ? उससे मनुष्य किस प्रकार द्विजत्व को प्राप्त होता है ? विवाह क्या है कब होना चाहिये ? बाल बिवाह क्यों वर्जित है

उससे क्या २ हानियां हैं ? विवाह में किन २ बातों का विचार चाहिये ? कौन २ बात त्यागने और कौन २ ग्रहण करने योग्य हैं ? इत्यादि २........

अनेकानेक शिक्षासम्पन्न विषयों, उपदेशों, व्याख्यानों, तथा ऐतिहासिक समाचारोंकी आपको सैर कराना है अतः यहां विश्राम करिये और विगतश्रम होकर "विभूषण" के द्वितीय भाग को चलिये ।

इति श्रीवैश्यवंशविभूषणे प्रथमोभागः ॥

ॐ

श्रीवैश्यवंशविभूषण

द्वितीयभाग

संस्कारविवरण ।

सं. अर्थात् अच्छे प्रकार सँभालकर जो किया जाय वह कर्म तथा क्रिया संस्कार है । वास्तव में भली प्रकार समझ बूझकर और सँभालकर जो कार्य्य किया जाता है उसका फल उत्तम होताहै । तब यह शरीर जो सब कर्मों का कारण है यदि संस्कृत अर्थात् आदरणीय, कार्य साधक, अपने तथा अन्यों के उपकार करने योग्य, विद्या धर्म सम्बन्धी शिक्षा से शिक्षित किया जाय तो फल और भी उत्तम होगा । क्योंकि जब कारण संस्कृत है तब जो कुछ कार्य उससे होगा अवश्यही सराहनीय होगा । जब मूल ठीकहै तब शाखा और पल्लव का निज २ कर्त्तव्य में सन्नद्ध होना आवश्यक है और यदि इतनी दूरदर्शिता की जाय कि मूल सुधार कर ही संतोष न करके क्षेत्र और बीज का भी संस्कार कर लिया जाय तब तो कदाचित् यह संभवही नहीं है कि ऐसे संस्कारित वृक्ष का फल उत्तमोत्तम न हो ।

महर्षियों ने इसी कारण कर्मों के संस्कार में वृथा न पड़कर शरीर के संस्कारों को, जोकि सब कर्मों का कारण हैं और गर्भाधा-

नादि संस्कारों को जोकि शरीर का भी कारण हैं अति उपयागी माना है ।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनःप्रेत्यचेहच ॥

मनु०अ० २ श्लो० २६

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन तीनों के गर्भाधान आदिक सब संस्कार वेदमंत्रों से होने चाहिये, इन से शरीर की शुद्धि और इस लोक और परलोक में पाप से निवृत्ति होती है ।

(१) शारीरिक कुसंस्कार वा पाप रोगादि दोषोंकी निवृत्ति ।

(२) आत्मा व मन में शान्ति सुचेष्टा वा विद्या धर्मादि गुणों का संग्रह करना । मनु आदि महर्षियों को संस्कारों से विशेषतः यही दो फल अभीष्ट थे ।

जिसका शरीर संस्कृत अर्थात् आरोग्यता करके शुद्ध और आत्मा सुविचारों से यथावत् प्रकाशित है वह माई का लाल क्या नहीं कर सक्ता है । जातिसुधार और देशोद्धार उसके निमित्त कोई बात ही नहीं । उन्नति करना उसके बांये हाथ का खेल है । सफलता सदा उसके सामने हाथ बांधे खड़ी रहती है । परन्तु हीराभी अधिक काल तक मिट्टी में पड़ा रहे तो उसकी प्रभा मिट्टी के परमाणुओं से न्यून हो जाती है । इसी प्रकार संस्कारों के ठीक न होने से शारीरिक बल अथवा आरोग्यता शरीर में नहीं रहती है और आत्मा मलिन रहता है । अतः उसके विचार भी मलिन होतेहैं और आत्मा यथावत् प्रकाशित न होनेके कारण उसकी बुद्धि सर्वत्र नहीं पहुंच सक्ती,

जैसे शरीर को नित्य न धोनेसे उसमें मल जम जाता है और दुर्गंधि आने लगती है। ऐसेही आत्माको शुद्ध न रखने से निन्दित भावना होने लगती है। इसी कारण महर्षियों ने स्नान, ध्यान, और संध्यादिक नित्य कर्मों से अहर्निशि का शारीरिक और मानसिक मल नित्य धो डालने को कहा है।

और द्विज शरीर के १२ संस्कार करनेकी आज्ञादीहै, वह यहहैं।

१ गर्भाधान २ पुंसवन ३ सीमन्तोन्नयन ४ जातकर्म ५ नाम करण ६ निष्क्रमण ७ अन्नप्राशन ८ चूडाकर्म ९ उपनयन १० वेदारम्भ ११ समावर्त्तन १२ विवाह।

किसी २ ने वेदारम्भ को उपनयन के और समावर्त्तनको विवाह के अन्तर्गत करके संस्कारों की गणना दशही नामों से की है। और किसी २ ने वाणप्रस्थ, सन्यास, और अन्त्येष्टि इत्यादि कर्मों को संस्कारों में मिलाकर उनकी गणना सोलह नामों से की है। परन्तु अभिप्राय सब का एकही है। न दश कहने से कोई संस्कार छूटता है न सोलह कहने से कोई बढ़ता है।

मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक २७–२९–३०–३४–३५–३६....
बृहत्पाराशरस्मृति अध्याय ४ श्लोक १४७-१४८-१४९-१५०....
याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक ११–१२–१३–१४....

इत्यादि धर्मशास्त्र के ग्रन्थों को अवलोकन करने से संस्कारों का विधिवत् ज्ञान होता है। यहां स्थानाभावसे संक्षेपतः केवल उनके नाम गिनाये गये हैं। आगे चलकर समयानुसार प्रत्येक का वर्णन किया जायगा और बतलाया जायगा कि वह किस प्रकार से होने चाहिये और उनका तात्पर्य्य क्या है। क्योंकि वर्तमान दशा में हमारे द्विज भाई अविद्यामे ऐसे ग्रस्त हैं तथा आलस्य मे ऐसे मस्त हैं कि

उपरोक्त संस्कारों का विधिपूर्वक होना तो दूर रहा प्रायः सब के नाम भी नहीं जानते। जो संस्कार होते हैं उनको लिखते लज्जा और कहते हँसी आती है। वेद मंत्रों के स्थान में भांड़िनें और जगइनें नाना प्रकार के गीतों और सोहरों से और भांड़ भडुये व रण्डियां भांति २ की अलापों और तानों से सब कर्मकाण्ड करा देती हैं। ढोल तासे, और तबले की ध्वनि, वेद ध्वनि को फटकने भी नहीं देती। थोड़े से यव तिल लेकर वेदविहित हवन नहीं सधता, परन्तु आतशबाजी में सैकड़ों रुपये स्वाहा हो जाते हैं। जाति देश तथा धर्म के अर्थ दो पैसे भी खर्च करने में डांड़ पड़ता है, परन्तु दावतों और जल्सों में घर फूंक कर तमाशा देखते हैं और इसीमें अपनी नामवरी समझते हैं। इस प्रकार व्यर्थ और निन्दित कार्यों में सहस्रों रुपयों का अपव्यय करके भी शूद्रवत् संस्कारहीन ही रहते हैं। तिस पर भी द्विज कहाने को मरते हैं। वही मसल है कि "मांगने को भीख, नाम लखपतराय" "निरक्षर भट्टाचार्य, नाम विद्यासागर"

"द्वाभ्यांजन्मसंस्काराभ्यांजायते इतिद्विजः"

जिस का जन्म दो बार होवै प्रथम बार जन्म कर के द्वितीय बार संस्कार करके उस का नाम द्विज है, भाइयो ! आपको द्विजकी पदवी देने वाला केवल संस्कारही है।

"जन्मना जायतेशूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते"

स्मरण रहे कि जन्म से मनुष्य शूद्रवत ही होता है संस्कारों के होनेही से उसमें द्विजत्व आता है। अतः जबसे चेतो तब से सही ऐसा करो जिस में द्विजत्व बना रहे। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है अपनी उन्नति का कारण देखो और सुधार का प्रयत्न करो।

उत्तमसन्तानोत्पादकसंस्कार।

सन्तान को अपनी आत्मा, अपना प्राण, अपना जीवनधन, अपना सर्वस्व, अपना गृहदीपक, कुलभूषण इत्यादि २ सभी कुछ कहते हैं। वास्तव में उत्तम सन्तान से बढ़कर संसार में कोई पदार्थ नहीं है। क्योंकि इससे केवल माता पिताही का नाम नहीं चलता, किसी विशेष गृह, स्थान अथवा प्रान्तहीका काम नहीं बनता किन्तु एक सपूत सारे देशका उद्धार करसक्ता है। अतः उत्तम सन्तानोत्पन्न करने का प्रयत्न प्रत्येक मनुष्य के निमित्त परमावश्यक है। इसमें गर्भाधान के प्रथमही से सावधानी उचित है क्योंकि जब नींव पुष्ट है, तब चाहे जैसी इमारत बनाते चलेजाओ। इसी प्रकार जब गर्भ उत्तम है तब बालक निःसंदेह उत्तम होगा। देखो किसान क्षेत्र बोने के प्रथम उसको खोद जोतकर, खाद डालकर, पटेला फेरकर, क्षेत्र शुद्ध करके उत्तम बीज ऋतुकाल में बोता है और समय समय पर उसकी उचित रक्षा करता है। क्षेत्र उगने पर उसमें तृण निरा कर समय २ पर पौधेको जल पहुंचाता है और उसके स्वभावानुसार उसकी रक्षा अधिक गर्मी या सर्दी से करता रहता है। तब उसमें मनमाना उत्तम फल लगता है। इसी प्रकार यदि ऋतु काल में, शुद्ध क्षेत्र में, शुद्ध वीर्य डाला जाय और उस की वर्णित संस्कारों से विधिवत् रक्षा की जाय तो इस में सन्देह नहीं कि संतान अति ही उत्तम हो। अतः माता और पिता को उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, तीक्ष्ण और बुद्धिनाशक को छोड़ कर जो पदार्थ शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम वर्द्धक हों जैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्न, पान आदिश्रेष्ठ पदार्थोंका सेवन

करै । जिस से रजस और वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हो जायें ।

साचेदेवमाशासीत, बृहन्तमवदातं हर्य्यक्षमोजस्विनं शुचिं सत्वसम्पन्नं पुत्रमिच्छेयमिति। शुद्धस्नानात्प्रभृत्यस्यैमन्थमवदातंयवानांमधुसर्पिर्भ्यां संसृज्यश्वेतायागोः सरूपवत्सायाःपयसालोड्यराजतेकांस्येवा पात्रे काले काले सप्ताहं सततं प्रयच्छेत् पानाय प्रातश्च शालियवान्नविकारान् दधिमधुसर्पिर्भिःपयोभिर्वा संसृज्य भुञ्जीत। तथा सायमवदातशरणशयनासनयानवसनभूषणाचस्यात् ।

चर०सं०शारी० स्था० अ० ८

" यदि ऐसीइच्छा हो कि मेरा पुत्र बृहत्काय, गौरवर्ण, सिंह किशोरवत्पराक्रमी, ओजस्वी, पवित्र और सत्वसम्पन्न हो तो उचित है कि ऋतुस्नानके दिनसे उत्तम यव का मन्थ, घी और सहद मिला कर उसमें ऐसी गाय का दूध मिलावै जिसका वर्णगौर और बछड़ा भी श्वेत हो इसको चांदी वा कांसे के पात्र में उचित समय पर सात दिनस तक निरन्तर पान करावै और प्रातः काल शालि अन्न वा यव के पदार्थों को दही, घृत, सहद, अथवा दूध के साथ देवै और सायं

काल के समय उत्तम घर में उत्तम पलँग, आसन, यान पर वस्त्र भूषणादि से अलंकृत करके बिठावे "

ऋतुःस्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयःषोडशस्मृताः।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी चया ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥
मनु०अ० ३ श्लोक ४६-४७

"महीना २ रजस्वला होना यह ऋतु काल स्त्री के स्वभावसेही होता है, सो सोलह रात्रि तक गर्भाधान करना कहा है, तिस में ऋतु होने की ४ रात्रि श्रेष्ठ पुरुषोंने निन्दित कही हैं ॥ ४६ ॥ "

"तिन सोलह रात्रियों में ऋतु होने की चार रात्रि और ११ हीं १३ हीं, यह ६ रात्रि गर्भाधान में वर्जित हैं बाकी १० रात्रि श्रेष्ठ हैं ॥ ४७ ॥ "

इन्हीं उपर्युक्त १० रात्रियों में गर्भाधान करना चाहिये । जब माता पिता दोनों में आरोग्यता परस्परप्रसन्नता और किसी प्रकार का शोक न हो जैसा चरक और सुश्रुतमें भोजनाच्छादनका विधान और मनुस्मृति में स्त्री पुरुष की प्रसन्नता की रीति लिखी है उसी प्रकार करैं और बर्तैं ।

देखो जब फोटोग्राफर हमारा चित्र खींचताहै तो प्लेटके सामने हम जिस दशा में होंगे वैसाही चित्र उतरेगा । अगर उस समय हम शोकार्त हैं तो शोकमान हर्षित हैं तो हर्षमान, एक आंख दबाए

हैं तो काना, एक पैर छिपाए हैं तो लँगड़ा चित्र उतरेगा । और जैसी पोशाक जैसा समय होगा उसके अनुसार चित्र होगा जैसे काले कपड़े होंगे तो काले और श्वेत होंगे तो श्वेत और कुछ न होंगे तो नंगाही चित्र खिंचेगा और शरीर के जिस भाग पर लाइट (रोशनी) पहुंचेगी वह गौर और जिस पर न पहुंचेगी वह कालाही आवैगा, और यदि लाइट बहुत ही कम हुई तो हमारा चित्र काले देव के सदृश आवैगा इसी प्रकार समागम के समय स्त्री पुरुष की जैसी दशा होती है, जैसा विचार वा ध्यान होता है वैसीही गुण सम्पन्न संतान उत्पन्न होती है ।

इसी कारण महर्षियों ने गर्भाधान संस्कार यथावत् करने की आज्ञादी है । रज और वीर्यको उत्तम भोजनों द्वारा शुद्ध करके, मन को परस्पर प्रेम और हासविलास से प्रसन्न करके, नेत्रों को सुंदर २ दृश्य और चित्रों से आनन्दित करके, श्रवणों को मनोहर कथाओं से तृप्त करके इत्यादि २ इन्द्रियोंकी प्रसन्नताके साथ, आत्माकी मलीनता को यज्ञादिक वेद मंत्रों से दूर करके गर्भाधान करनेको कहा है ।

यथोक्तेनोपसंस्कृतशरीरयोः स्त्रीपुरुषयोः मिश्रीभावमापन्नयोः शुक्रंशोणितेन सहसंयोगंसमेत्याव्यापन्नमव्यापन्नेन योनावनुपहतायाम प्रदुष्टेगर्भाशये गर्भमभिनिर्वर्त्तयत्येकान्तेन । तद्यथानिर्मलेवाससि सुपरिकल्पिते रञ्जनंसमुदितगुणं उपनिपातादेवरागमभिनिर्वर्त्तयति

तद्वत्यथावाक्षीरंदध्नाभियुतमभिषवणाद्विहाय स्वभावमापद्यते दधिभावंशुक्रंतद्वदेवमाभिनिर्वर्त्तमानस्यगर्भस्य स्त्रीपुरुषत्वेहेतुःपूर्वमुक्तः।

चर० सं० शारी० स्था० अ० ८

" ऊपर कहे हुए संस्कारों से शुद्ध किये हुए स्त्री पुरुषों का समागम होवै। और यदि उनका शुद्ध शुक्र और रज मिलकर अदुष्ट योनि द्वारा अदुष्ट गर्भाशय में प्रवेश करै तो निश्चय गर्भकी उत्पत्ति होती है जैसे यदि निर्मल और स्वच्छ धुले हुए वस्त्र में रंग चढ़ाया जाय तो निश्चयही बहुत अच्छा रंग चढ़ता है और जैसे दूध के साथ दही के मिलाने पर दूध अपने स्वभाव को छोड़ कर दधिभाव को प्राप्त करताहै। इसीतरह शुद्ध शुक्र के शुद्ध रजसे मिलने पर निश्चय गर्भ की उत्पत्ति हो जाती है। उत्पन्न हुए गर्भ में पुत्र होगा या कन्या इन हेतुओं को पहिले वर्णन कर चुके हैं।"

यथाहिवीजमनुपतप्तंतसंस्वांस्वांप्रकृतिमनुविधीयते व्रीहिर्वाव्रीहित्वंयवोवायवत्वं तथास्त्रीपुरुषावपियथोक्तंहेतुविभागमनुविधीयते तयोः कर्मणावेदोक्तेनविवर्त्तमानमुपादिश्यते प्राग्व्यक्तीभावात्प्रयुक्तेनसम्यक्कर्मणांहि देशकालसम्पदुपेतानांनियतामिष्टफलत्वं तथेतरेषामितरत्वंतस्मादापन्नगर्भांस्त्रियमभिसमीक्ष्यप्राग्व्य

क्लीभावाद्गर्भस्यपुंसवनमस्यैदद्यात्।

चर०सं०शा०अ० ८

" जैसा बुरा या भला बीज बोया जायगा उसका फल भी वैसाही होगा। जैसे व्रीहिके बोने से व्रीहि और यव के बोनेसे यव उत्पन्न होगा इसी तरह स्त्री पुरुष का शुक्र और रज जैसा होगा वैसीही सन्तान होगी, गर्भ के लक्षण प्रकट होने से पहिले ही यथोक्त वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करै। सम्यक् प्रयुक्त किये हुये देशोत्कर्ष और कालोत्कर्ष कर्मों का फल भी उत्तम होता है और इतर कर्मों का फल अनिष्ट है, इस लिये जब यह मालूम होजाय कि स्त्री के गर्भ रह गया परन्तु गर्भ के लक्षण प्रकट नहीं हुये हैं तब स्त्री को पुंसवन देवै"

तत्पश्चात् सीमन्तोन्नयन करै, जिसे वर्त्तमान समय में स्त्रियां सतवांसा कह कर "बाजै अनन्द बधाई सबै मिलि गावैं सोहर हो" इत्यादि मंत्रों से ढोल पीट कर करलेती हैं। (प्रश्न) गर्भाधान संस्कार में क्षेत्र व बीज की शुद्धि होही चुकी थी फिर पुंसवन और सीमन्तोन्नयन का झंझट क्यों लगाया (उत्तर) यद्यपि किसान भली भांति क्षेत्र शुद्ध करके शुद्ध बीज बोता है तदपि वह उगने पर्यन्त निश्चिन्त बैठा नहीं रहता। समय २ पर देखता है कि बीज उलटा तो नहीं पड़ गया, वृक्ष का अंकुर टेढ़ा तो नहीं निकलता। इसी प्रकार महर्षियों ने गर्भाधान में यदि क्षेत्र और बीर्य की शुद्धि वैदिक मंत्रों, आयुर्वैदिक क्रियाओं और मानसिक सुविचारों से भली भांति करके भी निश्चिंत हो जाने की आज्ञा नहीं दी है। किंतु रज और वीर्य के खमीर से जिस समय मांस का लोथड़ा बनने लगता है, उस समय उस की रक्षा पुंसवन से और जिस समय बालक पूर्णता प्राप्त करने

को होता है, उस समय इस विचार से कि उस में कोई त्रुटि न रह जाय सीमन्तोन्नयन संस्कार करने को कहा है। यह संस्कार केवल वैदिक मंत्रोंहीकरके नहीं हैं किन्तु आयुर्वैदिक क्रियायें साथही साथ हैं।

गोष्ठेजातस्य न्यग्रोधस्य प्रागुत्तराभ्यां शाखाभ्यां शुङ्गेनुपहते आदाय द्वाभ्यां धान्यमाषाभ्यां सम्पदुपेताभ्यां गौरसर्षपाभ्यांवासह दधिप्रक्षिप्य पुण्ये ऋक्षेपिबेत्। चर० सं० शा० अ० ८ पुंसवनविधि।

"गोष्ठ अर्थात् गौ चराने की जगह में उत्पन्न हुये वट वृक्ष की पूर्व और उत्तर की शाखाओं से दो निर्दोष कोपल लावै उन को दो धान्य माष (दो दाना उड़द) अथवा सफ़ेद सरसों के साथ दही में डाल कर पुष्य नक्षत्र में पान करै"॥

यदि उपरोक्त औषधों के गुण निघण्टु में देखिये या किसी सद्वैद्य से पूंछिये तो आंख खुल जावैगी कि वास्तव में पुंसवन भी कोई अच्छी वस्तु का नाम है।

गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजनछादन करना चाहिये और बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन करती रहै। जब तक सन्तान का जन्म न हो।

देखिये फल में जैसी सुगन्ध लानी होती है वालवृक्ष को वैसी ही सुगन्ध युक्त जलका आहार देते हैं सत्य है—"जैसा बोवोगे वैसा काटोगे"

बालसंस्कार के अद्भुतरहस्य।

यहां तक तो कुशल थी अब आगे चलकर संस्कारों की लीला देखने से बुद्धि नहीं काम करती । बच्चा पृथ्वी में गिरते ही नौबत झरने लगी, बधाई बजने लगी, सलामी दगने लगी, ढोल धमकने लगी, तबला गमकने लगा, गोले दगने लगे, आतशबाजी छूटने लगी, दावतें होने लगीं, नाचरंग होने लगा, गुलछर्रे उड़ने लगे, थैलियां कटने लगीं, रण्डियां अलापने लगीं, भांड़ों की नकलैं होने लगीं। जिधर देखो उधर खर्चे की भरमार है। घर से बाहर तक सब नेगी ही नेगी देख पड़ते हैं। जिसे देखो वही बखशीस लिये जारहा है। कुछ यह दशा अमीरों ही की नहीं है गरीब भाई भी हौंसिले के नशे में मस्त हैं। पास जो कुछ हो उसी को खर्च करने में संतोष नहीं है एक किता स्टाम्प लिये महाजन के यहां बैठे हैं—उधार आवै तो बखशीस बंटै । यदि कोई कहता है कि इतना व्यर्थ खर्च क्यों करोगे, बच्चा अभी मांस का लोथड़ा पानी का बुल्ला है रहा २, न रहा २, यदि ईश्वर वह दिन लावै कि बच्चा सयाना हो तो उसके विद्यारम्भ में सब हौसले पूरे कर लेना। तो अमीर हों या गरीब, बात सबको बुरी लगती है और उसे अपना शत्रु समझने लगते हैं। अपने ही ऐसे बुद्धि के आगर, चार तमाशबीनों में बैठकर गप्प उड़ती है कि भाई जल्सा तो अच्छा हुआ परन्तु किसी २ को अच्छा नहीं लगा। अमुक (फलां २) मनुष्य हम को आनन्द मनाने से रोकता था। यह सुनकर सब हंस पड़ते हैं कि वह जन्म का मनघुंसा है, उसको पराया सुख अच्छा लगताही नहीं, उसके बकने से क्या होता है। चार इष्टमित्रों की दावत न हो, महेफ़िल न हो, नाचरंग न हो,

आपस में चुहल न करैं, आनन्द न करैं, तौ क्या फिर सन्नाटा भरैं ग़म करैं । क्या ऐसा दिन सब को मिलताहै ? सदा नसीब होताहै ? इत्यादि २....

रंडी भी समयानुकूल अपने बिचार इसप्रकार प्रकट करतीहै "अजी सर्कार तोबा तोबा करो वह आपका दुश्मनहै जो इस वक्त रुपये का मुंह देखने को कहता है । रुपया प्यारा है कि बच्चा, खुदावंद उसको सलामत रक्खै, उसी की जान की ख़ैरात माल है । मेरे यहां तकिये पर एक फ़क़ीर है, मैं उस से तावीज बनवाकर भेजदूंगी, बच्चे का बालबांका जाय तो मेरा ज़ुम्मा । सिर्फ़ इतना और करना कि लड़के के मुड़ने मड़चटने में चद्दर मलीदा तकिये पर भेज दिया करना " रंडी की इस तरह वाणी सुन सब प्रेम में गदगद हो कहते हैं कि वाह बीबी तुम क्या बकती हो ? क्या मुड़ना मड़चटना बिना तुम्हारे हो जायगा ? तुम्हारा जी जैसा चाहे वैसी मनौती कर लेना । इत्यादि २....

इधर घर में स्त्रियों के ढाई चावल अलग ही पकते हैं टोले मुहल्ले की दश पांच एकत्रित होगईं कि लगी पञ्चायत होने " दुलहिनेऊं तोहारि बड़ी भागि आय की बंश भा । कतौंकै, बच्चवा कै नाक अभै छेदायदेव, जीमा जिऐ "

दूसरी " दीदी कनौनौ छेदायदेव, केहूतना राम नीक राखै "

तीसरी " बहिनेऊं नमवउ छदू धरौ, बड़ा होई तब दीख जाई"

चौथी " किछू हरज नाई है मोरी जिजिया के बेटउना का घेंगरिया मां लटाइ कै जियै के बेर घसीटिन रहै औ नमवउ सियाम घसीटे धरिनि रहै "

पांचवी "मैं खुद्दै अपने भैया का जिऐ के बेर गोबरेपर लेटावा रहौं औ गोबरधन नमवउ धरा रहै"

छठी "मोरी जेठानी के बेटवा नाईं जियत रहैं सो बहिनी घर की किछू चीज नाहीं सियाइनि भिख्खू नमवउ राखिनि, तब जिया"

सातवीं "बहिनी इहउ करेउ औ साले भीतर गभुआर बारउ उतराय डारेउ"

आठवीं "औ मड़चटनवां चाहे ललुआ का करैबै न किहेउ, अपन बिना मड़चटनै पड़ा रही, केहू तनाते जियै तो"

नवीं "बहिनी नजरि डीठि बहुतै बराएरहेउ, टेंहिया रांड फटकै ना पावै"

दशवीं "कबौं कबौं नीके भलेउ फूंक हांक डराय लीन किहेउ भला बाहिनेऊं"

इत्यादि २ बातों से वह ठान ठानती हैं कि बच्चे के संस्कार सब नष्ट भ्रष्ट कर देती हैं । और ऐसा करने में उन बिचारियोंका कुछ दोषभी नहीं है दोषहै सब अपना, जो नतो स्वयं कुछ विचारतेहैं न सुधार का प्रयत्न करते हैं, और न उन्हीं को उचित शिक्षा देते हैं कि कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान कर सकैं । जिस मनुष्य को दिशा भ्रम हो जाता है, पथ का यथावत् ज्ञान नहीं रहता । कभी पूर्व ओर जाता है कभी पश्चिम, कभी उत्तर ओर जाता है कभी दक्षिण, इसी प्रकार डावांडोल बना रहता है । यही गति स्त्रियोंकी है एकबार मरचटना किसी देवस्थान मे कराया और लड़का न रहा तो बस खोट होगई । यातो यही समझ गईं कि मरचटना अब होनाही न चाहिये या किसी पीर फ़क़ीर की तकिये पर कराने लगीं । यदि दैव

योग से लड़का बचगया तो उस कुल की वही सम्प्रदाय होगई । फिर तो यह होने लगा कि हमारे यहां मरचटना फ़लांपीर की क़बर पर होता है । कोई कहता है कि लालता देवी और को चाहै सर्वस्व दाता हों, मगर हमारे लेखे पत्थर हैं । हम को तो मदार बाबा सहाय होते हैं । किसी का मरचटना जो गाजीमियां के दरबार में हुआ तो मुण्डन मदारबाबा के दरबार में होता है । किसी को बेटा जो मदार बाबा देते हैं तो किसी की आस गाजीमियां पूजते हैं । किसी को वंश इमामहुसेन देते हैं तो किसी पर शहीदमर्द भी चद्दर मलीदा लेकर कृपा कर बैठते हैं । किसी का बेटा फ़लां फ़क़ीर की फूंक ही से जीता रहताहै । किसी का बेटा भूत प्रेत, पिशाच, जिन्द, पीर भक्ष ही जाते यदि अमुक नाउत चमार तथा म्लेच्छ न बचाता ।

सोरठा ।

हे द्विजगण समुदाय, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यगण ।
अजहूं चेतहु भाय, वंश रसातल जात है ॥

छंद ।

प्रभु करुणा कर शान्ति निकेत । तेहि तजि
पूजत क़बर परेत । कस सुख पैहहु असमति
जास । दही के धोखे खात कपास ॥

दोहा ।

क्रमहिबढ़त दुर्गुण दुखद, लघुकर गनिय न सोय ।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥

(मदारबाबा)

भाइयो ! अब भी शोचो धीरे २ यह कुरीतियां कुलरीतियां हो जावैंगी। जैसे अभी आप में से बहुत भाई यकायक बिना बिचारे कह बैठते हैं, कि भाई चाहै अच्छी रीति हो या बुरी, हमारे बाप दादे करते थे हम अवश्य करैंगे। इसी प्रकार आप के लड़के कहैंगे कि हमारे यहां मदार बाबा अथवा गाजीमियां, पीर, फ़क़ीर, भूत, प्रेत की पूजा पिता के सामने भी होती थी परन्तु पोते उसे परम्परा कुलरीति मान उस के त्याग और सुधार के नाम से ही चिढ़ जायंगे, यह जो आप अपने यहां कोई २ कुरीतियां देखते हो जिन का न शिर है न पैर। वह समय २ मे इसी प्रकार गढ़ गई हैं और अब उन के त्याग में लोह लगती है।

अभी थोड़े दिनों की बात है कि मैं और मेरे एक मित्र श्रीमान् पण्डित कन्हैयालाल जी शर्म्मा वैद्य, धनवार, शाहाबाद जि० हरदोई कुछ जानवर लेने मकनपुर गये थे। एक दिवस हम दोनों टहलते २ मदारों की सैर देखने गये। कहते लज्जा आती है कि अच्छे २ द्विज महाशय क़बर की परिक्रमा करते माथनवाते चद्दर मिठाई चढ़ाते और प्रसाद लेते देख पड़े। यही नहीं किन्तु उन के बालकों के अन्नप्राशन मुण्डनादि संस्कार की लीलायें भी दृष्टि गोचर हुई। शोक और महा ग्लानि से कहना पड़ता है कि इन लीलाओं के कर्ता अधिकतर मैंने हिन्दू और विशेषतः अपनेही वैश्य भाइयों को पाया। दूसरे दिन दैवयोग से उन में से एक लम्बी दाढ़ीवाले महाशय से हम लोगों से बाज़ार में भेंट होगई मेरे मित्र उक्त पंडित जी ने उन से पूंछा कि महाशय कल आप को कदाचित् मैंने क़बर के पास देखा था।

महाशय "जीहां मदारबाबा के दरबार में बच्चे का मुण्डन कराने गया था"

पं० जी "आपही यहां मुण्डन कराने आये हो या आपके यहां का और भी कोई कभी आया था"

महाशय "हमारे बाप भी आयेथे। हमारा और हमारे भाई भतीजे इत्यादि सब के मुण्डन यहीं हुये और होते हैं हमारे कुल की रीति परम्परा यही है"

पं० जी--"तो क्या मदारबाबा कोई बड़े ऋषि, मुनि, महात्मा, थे वा कोई आप के बुज़ुर्ग थे"

महाशय---"वह तो मुसल्मान थे उन की महिमा दुनिया जानती है"

पं० जी--"यही न कि मुसल्मानोंने सैकड़ों को बेधरम करडाला, हज़ारों के यज्ञोपवीत उतरा लिये, लाखों गोबध करडाले"

महाशय "बड़ोंकी निन्दा मतकरो लाखों आदमी यहां ज़ियारत करते, मनौती मानते, और इष्टफल पाते हैं"

पं० जी "लाखोंको जाने दीजिये आपही बतलाइये आपने कौन इष्ट फल पाया"

महाशय "मेरा वंश उन्हीं के प्रताप से चला और मेरा बेटा उन्हीं के प्रताप से जीता है"

पं०जी "तो क्या जब वह जीता था तब उसे आप अपनी स्त्री के पास बुला लेगये थे या आपकी धर्मपत्नीही यहां उसके पास आई थी, जो उसी के प्रताप से वंश चला। और यह बात तो मेरी

समझही में नहीं आती कि आप के बेटे को जिलानेवाला खुद क्यों मर गया । वाह साहब वाह ! ऐसी बातैं करते आप को लज्जा नहीं आती"

महाशय "मैं क्या करूं हजारों आदमी आते हैं, स्त्रियां नहीं मानतीं, लड़के को लेकर न आता तो आफ़त मचजाती"

पं० जी "क्या एक भेड़ी कुएं में गिरे तौ सब उसी में गिर जांय, लोगों को अनुचित करने से रोको स्त्रियों को उत्तम शिक्षा दो, समझाओ"

महाशय "समझावैं किसे, कोई मानताभी है । हक़नाहक़ कहकर जान आफ़त में डालैं"

पं० जी "आपकी स्त्री कोई अनुचित कार्य करती हो, आप के समझाने पर न मानती हो तो क्या आप उसे रोक नहीं सक्ते ? क्या वह यदि परपुरुषसे फसीहो तो आप आफ़त मच जानेके भयसे कुछ कहैंगे नहीं ? सत्य है किसी ने कहा है ।

चौपाई

तेंतिस कोटि देवता पूजे । अंधा धुंध बहुतसे सूजे ॥
नद्दी नाले कुआं पुजाये । जूता घूरे देव बनाये ॥
इतने हुं पर जबनहींअघाये । मुसलमानमुर्दामनभाये ॥
बीरमुहमदा पीर बुखारी । क़बरनकीपूजाभइजारी ॥
हिन्दूवैदिक धर्मबिसारी । पूजैंसैयद मियांमदारी ॥

महाशय "आप सत्य कहते हो हमारेही यहां देवता पूजने को क्या थोड़े हैं । देखो मुसल्मान कोई शिवमन्दिर को पूजा करने नहीं जाता । औरंगज़ेबने सैकड़ों मूर्तें फोड़वा डालीं और हम लोग ऐसे हैं कि उनके देवताओं को पूजने जाते हैं"

पं०जी–" तुम्ही सोचो "

दोहा ।

जगदीश्वर बिसराय के, क़बरैं पूजन जात ।
रौरेमति बौरी भई, भलो बुरो न सुझात ॥

महाशय "बस अब आप मुझे अधिक लज्जित मत करो अब मुझ से ऐसा काम न होगा, स्त्रियां न मानैंगी तो जांयगी कहां समझाने से पशुभी समझ जाते हैं"

पं०जी " मैं केवल आप के वास्ते नहीं कहता हूं किन्तु वह उद्योग करना चाहिये जिसमें सब भाई सुधर जांय "

महाशय " मेरी जहां तक चलेगी सब भाइयों से ऐसे अनुचित कार्यों को त्यागने की प्रार्थना करूंगा "

पं०जी " बस ऐसाही चाहिये आप को धन्य है मैं अपनी अहोभाग्य समझूंगा यदि मेरे समझाने पर आपने ऐसा किया । और आप द्वारा अन्य भाइयों का भी सुधार हुआ "

इत्यादि २ वार्त्ता होनेके पश्चात् हम सब अपने २ काम को चले गये ।

वाचकवर! मैं भी अपना श्रम सफल समझूंगा और अपनी अहोभाग्य समझूंगा । यदि मेरा यह लेख पढ़कर या सुनकर आप

लोग विद्या धर्म बिरुद्ध भ्रान्ति जाल में गिराने वाले व्यवहारों और कुरीतियों को त्यागदें और वृथा मियां मदारी भूत प्रेत फूंक हांक में विश्वास न कर के उस सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सच्चिदानंद, आनंदकन्द, परमात्मा के चरणों में लव लगावैं और बिश्वास करैं जिसकी इच्छा मात्रसे यह सारा संसार उत्पन्न हुआ, जो घट घट व्यापी है, जिसकी आज्ञा बिना एक पत्ती भी नहीं हिल सक्ती, जिस ने उसका नाम लिया वह पावन हो गया, गणिका गीध अजामीलसे पापी, सधनादिक कसाई, कबीरादि जाति के जुलाहे, पावन होगये। फिर द्विज वर्ग महर्षियों की सन्तान को क्या पूंछना है। मनुष्यों के उदाहण तो अनेक हैं पशु पक्षियों में भी जिसने जहां केवल उसीका सहारा लिया वहीं उसको सहारा मिला। भरुही के अंडे गज घण्ट से बचाने की बात कौन नहीं जानता। गज को ग्राहने जब ग्रसा और गजने सूंड़ उठाकर पाहि २ प्रभो चिंघार कर आरतनाद किया। भक्तभयहारी, जन हितकारी, परमदयालु प्रभुने तत्क्षण उसे बचा लिया। भक्त का दुःख जिस से पलमात्र भी नहीं देखा जाता, जिस को भक्त प्राणों से प्रिय हैं, ऐसा जो शरणागतवत्सल प्रभु उसे छोड़ कर भाइयो! यदि मदारबाबा को पूजने जाओ तो इस के सिवा और क्या कहसक्ता हूँ कि "विनाशकाले विपरीतवुद्धिः"

हत चेतस ढिग बसिवो अकाथ।
गङ्गा मदार को कौन साथ॥

कोई २ महात्मा ऐसे भी हैं जो सब जानबूझ कर सुधार का प्रयत्न नहीं करते। कहते हैं कि यदि किसी को रोकैं कुछ भलाबुरा होजाय तो अपयश जन्मभर का हो। हा धिक्कार! ऐसे २ कायरों

को कोटिशः धिक्कार है !!! क्या गाजीमियां या मदारबाबा परमेश्वर के नियम का उल्लंघन कर देता ? मृत्यु रोक रखता ? यदि ऐसा कर सक्ता था तो आप ही क्यों मरगया ? अपनेही को क्यों न बचालिया सैकड़ों कीड़े कबर के अन्दर मांस चुन २ कर खा गये।

यदि औरों को इष्ट फल देता है तो अपने ही लड़के पोतों को क्यों न मालामाल, करदिया ? और यदि उसमें कुछ भी सत्व है तो उसी के भक्त दाने २ को क्यों मुहताज हैं ?

चौपाई।

जिन आरम्भ शूरता कीन्हों। विघ्न परत साहस तजि दीन्हों॥ विरथा श्रम करि अपयश लहिगे। निंबुआ लोन चाटि कै रहिगे॥ इष्ट सिद्धिमहँ परै जो हानी। कबहुं न मन लाओ गिलानी॥ होई अवशि अटुट श्रम करौ। सेतुआ बांधि कै पीछेपरौ॥

(भूतप्रेत, फूंकहांक)

विचारशील भाइयो ! जिस प्रकार उपर्युक्त गाजीमियां, मदार बाबाकी पूजा की कुरीतियां प्रचलित होरही हैं उसी प्रकार भूत प्रेत हांकफूंककी भी धूम मच रही है। उस ने दस को लिया है तो इस ने पचास को धर लपेटा है। पूर्व से पश्चिम तक लोना चम्मारी की दुहाई फिरती है। बघेलवा छूटताहै। मरी कूदती है। मरहा अभुआताहै। चुड़ैल अपना भाव बताती है। हरदवलला अपना भय दिखाते हैं। कहीं जिन्द मियां अतर की फुलहरी लेने आते हैं। कहीं भुईहार चोटी

फटकारता हुआ जी के बदले जी मांगता है । कहीं खेर की भुइयां सुअर का घेंटा और तपौना खाने को पेट बजाता है ।

इत्यादि २ अनेक प्रकार की धूर्त्तता और पाखण्ड से महामूर्ख अनाचारी, स्वार्थी, भङ्गी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि भगल रचते हैं । और अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट उच्छिष्टभोजन, डोरा, धागा, तावीज़, बांधते बंधवाते फिरते हैं । और बहुत से भोलेभाले भाइयों के धन का नाश और सन्तान आदि की दुर्दशा कर रोगोंको बढ़ाकर दुःख देते फिरते हैं ।

कहीं कोई बीमार हुआ कि यह लगे लंबी चौड़ी तानने । कोई कहता है कि इस पर जादू हुआ है, कोई कहता है कि इस पर भूत सवार है । झांझ, मृदङ्ग, ढोल, थाली, आदि बजा २ कर अभुआने लगते हैं कि अब नहीं छोड़ते प्राण लेही लेंगे । तब उस बीमार के संबंधी उस के पैरों गिरते हैं, विनय करके कहते हैं कि आप चाहे जो लीजिये इस को बचा दीजिये । तब वह धूर्त्त मेवा, मिठाई, घी, तेल, सिन्दूर इत्यादि पदार्थ वस्त्र, आभूषण, रुपया, पैसा, और जीव के बदले जीव (भेंड़ा, बकरा, मुर्ग़ा, सुअर,) आदि नाना प्रकार की पूजा ले कर शान्त होता है ।

बड़े शोककी बात है जो ऐसे अनाचारियों का लोग विश्वास करके उनको मनमानी पूजा देते हैं । यदि उनकी पूजा जूते, दण्डे, लात, घूसे वा चपटे से एक बार भी करदी जाय तो उनके देव चट चम्पत हो जांय और फिर वह किसी भोले भाई के लूटने का ढोंग न रचैं ।

विचारने की बात है कि वास्तव में भूत प्रेत क्या है ?

मनु० अ० ५ श्लोक ६५ से स्पष्ट है कि मृतक शरीर का नाम प्रेत है और जब उस शरीर का दाह होचुका तब उसका नाम भूत होताहै। अर्थात् वह अमुक नाम पुरुष था, जितने उत्पन्न हों वर्त्तमानमें आके न रहैं वे भूतस्थ हैं। इस से उनका नाम भूत हुआ। ऐसा ब्रह्मा से लेकर आज पर्य्यन्त विद्वानों का सिद्धान्तहै इसके पश्चात् मतांतरहै।

किसी का मत है कि जब कोई प्राणी मरता है तो उस भूत पुरुष का जीव पाप पुण्य के वश होकर, परमेश्वर की व्यवस्था से, अपने कर्मानुसार सुख दुःख भोगने के अर्थ, जन्मान्तर धारण करता है। इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्थाका कभी नाश नहीं होसक्ता। अज्ञानी लोग वैद्यकशास्त्र व पदार्थ विद्या के ज्ञान और विचार से रहित होकर सन्निपातज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानसिक रोगों का नाम भूतप्रेतादि धरते हैं। और वृथा शंका रूप भूत प्रेत कल्पना कर दुःखजाल में पड़ते हैं।

और किसी का मत है कि वास्तव में भूतयोनि है। जबकोई महापापी मरताहै, तो उसभूत पुरुषका जीव परमेश्वर की व्यवस्थानुसार अपने कर्मोंका फल भोगनेके अर्थ भूतयोनि पाताहै। जिसमें उसको महाकष्ट सहनकरना होताहै, भूखों प्यासों मराकरताहै, सदाअशुद्ध रहता है, किसी पवित्र पदार्थको ग्रहणकरना बीचरहा, उसकेपास जानेतकको भी सामर्थ्य नहीं रखता। यहांतक्क कि कुआं बावली तालावका जलभी नहीं पीसक्ता। लघुशङ्का या आबदस्तकापानी पीकर दिनकाटताहै। इसीसे जो नाउत उसेपूजतेहैं वह महाघृणितकर्म करके प्रथम अपनेको अशुद्ध बना लेते हैं आबदस्तके पानीसे उसका आवाहन करते हैं तब उसकी गति उन के पास तक होती है। इसी प्रकार जो मनुष्य उसमें विश्वास लातेहैं, प्रथम घृणित पदार्थों के संसर्ग से अपने को अशुद्ध कर लेते हैं तब

उसकी गति उन तक होतीहै । परन्तु इससे लाभ कुछ भी नहीं होता क्योंकि ऐसी दुष्टआत्मा भला किसी का नहीं कर सक्ती और बुरा भी यदि कर सक्ती है तो उन्हीं अशुद्ध मनुष्यों का जो उसमें विश्वास लाते हैं। क्योंकि सुंदर पवित्र पुरुष या स्थान के पास तो यह जाही नहीं सक्ती अतः बुद्धिमान पुरुषों को सत्वहीन होकर दुःखदाई दुष्टात्माका प्रयोग करना सर्वदा निन्दित है। उसको न मानना और तिरस्कार करनाही बुद्धिमानों का काम है।

थियासोफिष्ट सम्प्रदाय का सिद्धान्त है कि जो मनुष्य भूत प्रेत में विश्वास नहीं करता उसके शरीर से भूत को एक ऐसी दुर्गन्ध निकलती मालूम होती है कि वह उसको असह्य होती है। उस से वह दूर भागता है। परन्तु जो मनुष्य उस में विश्वास करता है उसके शरीरसे भूत को एक प्रकार की सुगन्ध आती हैं।जिस की चाहसे वह बार बार उस प्राणी के पास जा २ कर उसे कष्ट देता है। क्योंकि—

"जाकर जौन स्वभाव मिटै नहिं जीवसों।
नींब न मीठी होय सिंचै गुड़ घीवसों" ॥

जिसने इस जन्म में नाना प्रकार के पाप और दुष्ट कर्म किये हैं। जिन के कारण उस को भूतयोनि के कष्ट सहने पड़े हैं, वह दुष्टआत्मा बुरा करने के अतिरिक्त किसीका भला नहीं कर सक्ती। संसार में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिस में परमेश्वर को त्याग कर भूतपूजा बतलाई गई हो। और ऋषिमुनिप्रणीत धर्मशास्त्र में तो भूतपूजा महा पाप बतलाई गई है। अतः हे भाइयो ! आप में से जिस किसी को ऐसा महाभ्रम हो अथवा किसी महाधूर्त्त, पाखण्डी, कपटी, के जाल में आ गये हो तो विनय यह है कि—

चौपाई।

ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता। व्यापक अजित अनादि अनन्ता॥ गो द्विज धेनु देव हितकारी। शरणागतवत्सल भयहारी॥ जनरञ्जन भञ्जन खलब्राता। वेदधर्मरक्षक सुरत्राता॥ ताहि भजौ सब भर्म भुलाई। भूत प्रेत महँ परौ न भाई॥

दोहा।

भूत प्रेत आदिक जिते अहैं नर्क के पन्थ।
सब तजि सीतारामपद भजहु कहहिं सद्ग्रन्थ॥

सुरीति प्रचार।

प्रियपाठक! यह जो आप के समाज में गड़बड़ मची है, किसी के संस्कार होते ही नहीं हैं, कोई जानता ही नहीं कि संस्कार का क्या अभिप्राय है, किसी के यहां वर्णित लीलाओं से संस्कार नष्ट भ्रष्ट करदिये जाते हैं कोई दुराचारी नाउतों के फंदे में फंस कर अपनी सन्तान का सत्यानाश कर रहा है यह सब दुर्दशा केवल विद्या के अभाव से होरही है॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

ऋ० मं० १० सू० ७१ मं० ४

"जो अविद्वान् हैं वे सुनते हुये नहीं सुनते, देखते हुये नहीं

देखते और बोलते हुये नहीं बोलते हैं अर्थात् अविद्वान् इस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध का जाननेवाला है उसके लिये विद्या ऐसे अपने रूप और शृङ्गार का प्रकाश करती है जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण को धारण कर अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप पति के सामने प्रकाश करती है " तात्पर्य्य यह कि विद्या के बिना पदार्थों का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। न आंख ठीक देख सकती है न कान ठीक सुन सक्ते हैं और न मुंह ठीक बोल सक्ता है । क्यों न हो, विद्या भवानी, की महिमा अपरम्पार है। विद्या का अर्थही पदार्थों का यथार्थ ज्ञान होना है ।

अतः हे प्यारे भाइयो! हम सब वह प्रयत्न करैं जिस से हमारे समाज में विद्यामार्त्तण्ड अपनी सहस्रकला से प्रकाशित होजाय और हम सब स्वयं अपनी भूल को समझ कर कुपथ से मुंह मोड़ैं और कुरीतियों को त्याग कर सुरीतियों का प्रचार करैं । जब तक विद्या का प्रकाश प्रत्येक के हृदयतम को नष्ट न करदे, हम सब को उचित है कि जाति के प्रधान २ मुखिया और विद्वानों से शिक्षा लें और प्रथम भाग में वर्णित रीत्यनुसार जातीयसभायें स्थापित करैं। जिन में एकत्रित हो २ कर जातीय उन्नति और सुधार का प्रयत्न करैं और उत्तम शिक्षा का सुन्दर २ लेखों और व्याख्यानों से जातीयसमाचारपत्रों और विद्वान् उपदेशकों द्वारा जाति भाइयों में प्रचार करैं । जो जातीय मनुष्य सुन कर और समझ कर भी कुमार्ग न त्यागै उस को सभा के विचारानुसार उचित जातीयदण्ड दें और अपने प्यारे बाल बच्चों के प्रत्येक उत्साह (जन्म, अन्नप्राशन, मुण्डन, यज्ञोपवीत, बिवाहादि) में वृथा धन का सत्यानाश रंडी,

भांड़, भंडुहों में न करके कुछ न कुछ अपनी जाति सभाको प्रदान किया करैं। जिस से सभा के सब कार्य सुगमता से हुआ करैं और सभा उसी धन से जाति भाइयों की आर्थिक और पारमार्थिक दोनों सहायता कियाकरै अतः ऐसे शुभ कार्यों में विलम्ब न होना चाहिये।

दोहा।

बलसों, बुधिसों, जतनसों, करि साहस धरिधीर।
अपनो कुल को जाति को, हरो दुःख द्विजवीर॥

बाल संस्कार।

संस्कारों की अनोखी २ लीलाओं और अद्भुत २ रहस्यों का वर्णन बढ़ाने से अब कोई प्रयोजन नहीं है गत लेख से हमारे पाठक इस विषय को भली भांति समझ गये होंगे कि संस्कार अज्ञानतावश किस प्रकार नष्ट भ्रष्ट कर दिये जाते हैं और उन का संशोधन किस प्रकार होना चाहिये।

अब यह बतलाना आवश्यक है कि उक्त संस्कार किस प्रकार धर्मशास्त्रानुसार होने चाहिये। प्रत्येक की रीति, व्यवहार और समय क्या है। उस के अनुसार करने का तात्पर्य्य क्या है। यद्यपि यह विषय बड़ा है और इस के विस्तारपूर्वक वर्णन के वास्ते एक ग्रन्थ पृथक् चाहिये तथापि मुख्य २ बातैं छोड़ते भी नहीं बनतीं अतः संक्षेपतः उन का वर्णन किया जाता है।

प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते।
मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम्॥

मनु० अ० २ श्लो० २८

" नालछेदन से पहिले पुरुष का जातकर्म संस्कार करना चाहिये और तब स्वगृह्योक्त मन्त्रों करके सुवर्ण, मधु, घृत, इनका प्राशन करावे "

तात्पर्य्य यह है कि जब बच्चा मा के पेटसे निकलता है तब उस का समस्त शरीर गर्भ के मल से लिप्तरहता है जिसको स्त्री लोग तत्कालही मुख, नासिका, कान, आंख, इत्यादि से पोंछकर साफकर देती हैं । परन्तु कंठ (गला) उसी भांति साफ होना चाहिये और अन्दर की नलियां (लंगस) भी मल से रहित होनी चाहिये जिसमे वायु अपना मार्ग सुगमता से पावै, बच्चे को लार घूंटने तथा दूध पीने में सुगमता हो । इसी कारण घृत और मधु चिकने मीठे और लसीदार पदार्थों से प्राशन कराने को लिखा है । आयुर्वैदिक सिद्धान्त से इन का गुण भी बुद्धिबलवर्द्धक है । और धर्म शास्त्रानुसार भी जातकर्म का यही फल है परन्तु साथही प्रसूता स्त्री के भोजनका भी यथायोग्य प्रबन्ध होना चाहिये क्योंकि उसी के शरीरांश से बालक का शरीर होताहै । उसको ऐसे पदार्थ देने चाहिये जिससे उसके दूधमें उत्तम गुण प्राप्तहों और क्रमशः बालक और स्त्री दोनोंका शरीर पुष्ट होताजाय । जिनके यहां बच्चेको दूध पिलाने के निमित्त धाई नौकर हो तो उसको भी उत्तम पदार्थोंका खान पान उत्तम दूधकी इच्छासे कराना चाहिये जिससे बालक उत्तमबलपराक्रमयुक्तहो ।

नामधेयंदशम्यांतु द्वादश्यांवास्यकारयेत् ।
पुण्येतिथौमुहूर्त्तेवा नक्षत्रेवागुणान्विते ॥

मनु० अ० २ श्लो० ३०

" जन्म से दशवें दिन अथवा बारहवें दिन संतान का नाम

करण होना चाहिये और इन दिनों में यदि किसी कारणसे न होसकै तो पवित्र तिथि शुभ मुहूर्त और शुभ नक्षत्र के दिन करावै"

तात्पर्य यह कि नामकरण में अधिक विलम्ब होने से स्त्रियां दुलार के भोंड़े २ नाम रख लेती हैं और वह फिर सारी आयु तक लोग कहा करते हैं । मैंने एक ब्राह्मण ग्रेजुएट का नाम मुनमुन और उसके छोटे भाई का नाम रुनझुन सुना । यद्यपि उनके नाम जो पश्चात् को रक्खे गये थे लिखने मात्रको और थे ।

मंगल्यं ब्राह्मणस्यस्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम् ।
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥
मनु० अ० २ श्लो० ३१

"ब्राह्मण का नाम मंगलवाचक करै और क्षत्रिय का नाम बल से युक्त करै वैश्य का नाम धन से युक्त करै और शूद्र का नाम निन्दा से युक्त करै"

तात्पर्य यह कि जिस में नामही से वर्ण का बोध हो जाय इसी अभिप्राय से वेष भी वर्णानुसार होने की महर्षियों की आज्ञा है ।

शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् ।
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥
मनु० अ० २ श्लो० ३२

"ब्राह्मण के नाम मे शर्म्मा (कल्याण करनेवाला) क्षत्रिय के नाम मे वर्म्मा (युद्ध करनेवाला) वैश्यका नाम पुष्टि से

युक्त गुप्त (कृषि बाणिज्य और गौका रक्षक) और शूद्रके नाम मे दास (सेवक) लगाकर कहना चाहिये"

तात्पर्य्य यह कि जब नामके साथ उसके कर्त्तव्य (ड्यूटी) कीभी चेतना होती रहैगी तो मनुष्य उसे कभी न भूलैगा। इसप्रकार प्रत्येक वर्ण अपने २ कर्त्तव्यको त्याग न करके सुमार्गपर बने रहैंगे।

स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् ।
मंगल्यं दीर्घवर्णान्त माशीर्वादाभिधानवत् ॥
मनु० अ० २ श्लो० ३३

"स्त्रियोंकानाम ऐसाहो।जिसका सुखसे उच्चारण होजाय स्पष्टअर्थवाला मनोहर और मङ्गलवाचकहो दीर्घवर्ण उसके अन्तमेंहो और आशीर्वाद के शब्दसे युक्त हो"

तात्पर्य यह कि जैसे स्त्री व्यक्ति सुख को देनेवाली है वैसेही उसका नाम भी ऐसा मनोहर हो जिसके श्रवण मात्र से सुख प्राप्त हो।

चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मंगलं कुले ॥
मनु० अ० २ श्लो० ३४॥

"चौथे महीने में बालक को सूर्य के दर्शन कराने के निमित्त घर से बाहर निकालै और छठे महीने में अपने कुलाचरणानुसार अन्नप्राशन करावै"

तात्पर्य यह कि चार महीने तक बच्चा इस योग्य नहीं होता

कि घर से बाहर निकाला जाय अथवा उसका कोमल अंग सूर्य के प्रकाश को सह सके और इसी प्रकार छठे महीने तक बालक की आंत इस योग्य नहीं होती कि अन्नग्रहण करके पचा सके -

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः।
प्रथमेऽब्दे तृतीयेवा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात्॥
मनु० अ० २ श्लो० ३५

"सम्पूर्ण द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, के बालकोंका चूडाकर्म (मुंडन) प्रथम अथवा तृतीय वर्ष में होना चाहिये यही वेद की शिक्षा है"

तात्पर्य यह कि बच्चे का सुकुमार शिर और मस्तिष्क कम से कम एक वर्ष पर्यंत इस योग्य नहीं होता कि बार जो इसकी सर्दी गर्मी से रक्षा करते हैं उतारडाले जांय।

संस्कारों और उन के तात्पर्यों पर जितनाही विचार कियाजाय उतनाही उनका गूढ़ और गम्भीर भाव पाया जावैगा। परन्तु वर्त्तमान समय मे लोगों की रुचि बुद्धिप्रमाण पर अधिक रहती है अतः यहां पर संस्कारों के तात्पर्य उसी के अनुसार दिखाये गये हैं। किन्तु जिसकी जितनीही अधिक बुद्धि है वह उतनाही अधिक उत्तम सिद्धान्त उन से निकाल सकता है। धर्मशास्त्र से, आयुर्वेद से विज्ञानशास्त्र से, और वर्त्तमान साइन्स से, इत्यादि २ जिस ओर से देखिये उस ओर से ऋषिप्रणीत नियम सारगर्भित मिलते हैं। अतः प्रत्येक द्विज को यथासम्भव उनका यथावत् पालन करना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझना चाहिये।

सन्तति सुधार ।

सन्तान को जैसी संस्कारों की आवश्यकता है उससे भी अधिक उत्तम शिक्षा की आवश्यकता है । जैसे किसान ने खेत और बीज शुद्ध कर सब कुछ उपाय करके खेत बोया और उगने पर वृक्ष के कोपलों की उचित रक्षा न की, तो कभी पशु चर डालैंगे, कभी रोग लगैगा, कभी व्याधि आवैगी, कभी सूखने लगैगा, बाढ़ मारीजायगी, उचित समय में न होगा, टेढ़ा बेढ़ा होगा, कुढंग कुडौल होगा, वन्ध्या होजायगा, अथवा फलही उत्तम न देगा इत्यादि २"

इसी प्रकार सन्तान को यदि उत्तम शिक्षा न दीगई । तो सम्भव है कि कोई अधर्मी होगा, कोई कुकर्मी होगा, कोई चोर होगा, कोई जार, कोई लवार, कोई बटमार, कोई लम्पट, कोई जुआरी, कोई रोगी, कोई दोषी, कोई अनाचारी, कोई अत्याचारी, कोई छली, कोई कपटी, कोई नष्ट होगा, कोई भ्रष्ट होगा, कोई पिता की सेवा दण्ड से करेगा, कोई माता की पूजा पाद्यम् पाद्यम् मंत्र से करेगा, कोई रियासत बेंचैगा, कोई घर, कोई कुल में कलंक लगावैगा, कोई बाप दादे का नाम रखावैगा ।

अतः प्रत्येक माता पिता को उचित है कि सन्तान को उत्तम शिक्षा करैं । जिस से वह सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावैं और न कोई कर्म देश काल तथा प्रकृतिभाव के विरुद्ध होने पावै । जब बोलने लगैं तब माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सकै वैसा उपाय करै । जो जिस वर्ण का स्थान हो उसी से ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अक्षरों का ठीक २ बोलना बतलावै । सुन्दर स्वर, अक्षर, मात्रा और वाक्य सिखलाती

रहैं। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हठ, शोक इत्यादि से बचाती रहे। अधिक लाड़ दुलार में पड़कर सन्तान के अवगुणों पर दृष्टि रखना भूल न जाय। अश्लील शब्दों का बकना, भांति २ के भोंड़े नाम रखना और मारना आदि न सिखावै। जब वह अच्छी तरह बोलने और कुछ २ समझने लगैं तब माता पिता उनको सुन्दर वाणी से बड़े, छोटे, बराबरवाले, मान्य, राजा, विद्वान आदि से बोलना, बतलाना, उन के पास जाना, उठना, बैठना, आदि की शिक्षा करैं। जिस से उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करै। उसके पश्चात् क्रमशः ऐसी २ रोचक उपदेशयुक्त कथा कहानियां दोहे, चौपाई, छन्द, श्लोकादि कण्ठस्थ करावैं, जिन से सदुपदेश, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से यथोचित बर्त्ताव करना आजाय। सदा सत्यभाषण, शौर्य्य, धैर्य प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावैं। वह उद्योग करैं जिस से सन्तान बुद्धिमान्, क्षमाशील, निश्चिन्त, निर्भय, लज्जावान्, कार्यपटु, अत्यन्त उत्साही और धार्मिक हो सदा मांगलिक आचार करैं। जैसे सद्गुणों के ग्रहण की शिक्षा करैं उसी प्रकार दुर्गुण, चोरी, आलस्य, प्रमाद, मादकद्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्षा, द्वेष, मोह आदि दोषों के त्यागने की शिक्षा दें। यदि सन्तान एकबारभी द्यूत तथा मिथ्याभाषणादि निन्दित कर्म करै तो स्नेहवश माता पिता उसे छोड़ न दें। किन्तु प्रथमही बार उचित दण्ड दें जिसमें फिर वह वैसा कर्म करने का साहस न करै। वाटिका में माली जिस वृक्ष को अनुचित इधर उधर लटकता फटकता देखता है तत्काल उसे ऐसे बन्धन से जकड़ता है तथा ऐसी काट छांट करता है कि वृक्ष

सदा के लिये सीधा होजाता है । यदि बड़े होने पर माली उसे सीधा करना चाहै तो अति परिश्रम करने पर भी असम्भव है । यही दशा सन्तान की भी है । परन्तु स्मरण रहे कि अनुचित दण्ड देना सर्वथा वर्जित है ऊपर से चाहे जितना भय दिखावै भीतर से कृपा-दृष्टि रक्खै ।

दोहा ।

ताड़न में गुण बहुत हैं, लालन में दुख भूरि ।
ताते शिष्यन अरु सुतन, ताड़िय कर्म बिसूरि ॥

जो जो विद्या धर्मविरुद्ध भ्रांति जाल में गिरानेवाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश करदे जिस से उन को भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो और छली कपटी धूर्त्तों की माया के फन्दे में न पड़ें ।

विदित हो कि सन्तान को उत्तम शिक्षा देना जिस प्रकार माता पिता का मुख्य कर्त्तव्य है उसी प्रकार उसके आहार, विहार, शृंगार, साथ और स्वास्थ्य का उचित प्रवन्ध होना अत्यावश्यक है ।

(१) आहार— शान्ति, आरोग्य, बल वुद्धि, पराक्रम वर्द्धक, घृत, दुग्ध, मेवा, मिष्ठान्न, अन्न पानादि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन और मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्धित, तीक्ष्ण, तिक्त, रूक्ष आदि वुद्धिनाशक पदार्थों का त्याग ।

(२) विहार—ऋतु काल के अनुसार उचित समयविभाग नियत करके उसी के अनुसार श्रम तथा विश्राम करना, भोजन करना, सोना, जागना, चलना, फिरना, खेलना, कूदना, इत्यादि.... परन्तु अधिकता सबकी दुखदाई है । बालकों को ऐसा खेलना भी

वर्जित है जिस में हाथ पैर तथा शरीर को श्रम न पड़े जैसे ताश, चौसर, गंजीफा, शतरंज इत्यादि और श्रम भी ऐसा वर्जित है जिस से शरीर थककर विह्वल हो जाय।

(३) शृङ्गार—केवल सामान्य स्वच्छ वस्त्रों ही का होना चाहिये। बालकों को चटक मटक रखना अथवा आभूषणों से आभूषित करना सर्वथा निन्दित और दुखदाई है। आभूषण विद्या का सर्वोपरि है। सन्तान को उसी से आभूषित करना चाहिये।

(४) साथ—माता पिता आचार्य्य और विश्वासयोग्य सज्जन का होना चाहिये। दुर्जन दुराचारी, दुष्कर्मी और दुष्टका नहीं। वर्त्तमान समय में नीचभृत्य और कुकर्मी सखा बालकों को प्रायः बिगाड़ देते हैं। अतः ऐसे नौकरों से मेल और कुकर्मी लड़कों के साथ खेल, चतुरजन अपने बालकों को न करने दें। और अपने साथ प्रायः हवा खाने तथा सैर करने ले जाया करैं। तब जो पदार्थ बालक के दृष्टि गोचर हों उन का क्रमशः शनैः २ यथार्थ ज्ञान करा दिया करैं।

(५) स्वास्थ्य—इसका सबसे उत्तम उपाय ब्रह्मचर्य्य धारण कर अतियोग[1], अयोग[2] तथा मिथ्यायोग[3] न करना है।

---

१ अतियोग—जो इन्द्रिय जितना काम दे सक्ती है उस से अधिक काम लेना।

२ अयोग—जो इन्द्रिय जिस काम के लिये है उस से वह काम न लेना।

३ मिथ्यायोग—भयानक पदार्थों का देखना भ्रम लाना इत्यादि।

दोहा ।

संस्कार शिच्चा सुभग, उचित अहार विहार।
साथ स्वास्थ्य निर्मल वसन, सन्तति देत सुधार ॥
तासों सबसों विनय है, जे चाहत कल्यान।
तन मन धन सों करि जतन, लें सुधार सन्तान ॥

उपनयन ।

(उपनयनादि संस्कारों के लोपका कारण)

प्रिय पाठक ! बस अब नहीं लिखा जाता, लेखनी थर थर कपने लगी, कलेजा धड़ धड़ धड़कने लगा, नेत्र टप २ टपकने लगे जब यह कहना पड़ा कि वैश्यों ने सर्वोपरि और सर्वसुखदाई उपनयन संस्कार को (जिस पर अपनी, अपने बाल बच्चों की, अपने जाति की और अपने देश तथा सारे संसार की सारी उन्नति निर्भर थी) एक मात्रही भुला दिया। सौ में दश माई के लाल मिलैंगे जिनके यहां अबतक उपनयन संस्कार होता चला आया है । परन्तु कोई कार्य बिना कारण के नहीं होता किसी ग्रेजुएट से डिप्लोमा छिनजाना कोई सहज बात नहीं है । फिर उपनयन ऐसे संस्कार का विशेष द्विजों से छुट जाने का कोई बृहत्कारण अवश्य होगा।

इतिहासों के देखने से विदित होता है कि महाभारत पर्यन्त हमारे देश की दशा अति उत्तम थी। परन्तु जब से मुसल्मानों के आक्रमण तथा शासन हुये हम पर और हमारे धर्म पर बड़ा अन्याय, अत्याचार और आक्षेप हुआ।

जिसने इस्लाममत ग्रहण किया आदर व प्रतिष्ठापात्र बना। सूबादार, जागीरदार, मंसबदार, नायब इत्यादि पदों पर शोभित हुआ। परन्तु जिस ने स्वधर्म का त्याग न किया काफिर और हिन्दू कहा गया जिस का मारना, काटना, लूटना, फूकना, सताना, इसलाम में अधर्म न था अत्याचार यहां तक बढ़ा कि सारे भारतमें कोलाहल मचगया। न देव बचे न देवी, न शिवालय बचे न देवालय, न वेद बचे न शास्त्र, न मालाधारी बचे न तागाधारी, न चोटी बची न बेटी।

भाइयो! आपने देखा होगा जैसे वर्तमान समय में अब टका चूहा लगता है, तब किसी को देखो दश पूंछ पकड़ लटकाये आता है, कोई बीस टांगे खड़ा है। इसी प्रकार काफिर मारकर ग़ाज़ी का पद पाने के लोभ से किसी ओर से दश चोटीवाले मुंड कोई यवन लारहा है, किसी ओर से बीस। कहीं किसी ने सर्वघात करने की आज्ञा दी है। कहीं माला ढेर किये जलारहे हैं। कहीं यज्ञोपवीत, कहीं वेद शास्त्र की पुस्तकों से गुसलखाने का पानी गरम हो रहा है। कहीं मन्दिर ढहाये जारहे हैं। उन के स्थान पर मसाजिदें बन रहीं हैं। कहीं मूर्तियों पर टांकी धमक रही है।

ऐसे समय में अनेकानेक द्विज बरबश मुसल्मान करडाले गये। हजारों प्राणभय से होगये। सैकड़ों ने भय के कारण ऊपर से अपना वेष मुसल्मानी करलिया। यज्ञोपवीत छिपालिया, संस्कार चोरी से करने लगे। प्रकट में दो चार मुसल्मानी रीतैं भी करने लगे जिस में कोई इन को हिन्दू लख न पावै क्योंकि प्रकट होनेपर विकराल जजिया (टैक्स जो हिंदूमात्र को परता था) देना होता और व्यापार इत्यादि

में माल असवाब का फिरका समझ कर (मालेहराम) कह कह कर लूट लेते थे ।

बालबिवाह की भी उसी समय से नींव पड़ी क्यों कि बिवाही कन्या को मनकूहा कह कर मुसलमन्टे छोड़ देते थे । परन्तु कुआंरी कन्या बरबश अपने घर मे डाल लेते थे । जिस की कहीं सुनवाई न थी । सुनवाई उसी की थी जो कलमा और नेमाज़ जानता हो ।

सैकड़ों माई के लाल ऐसे भी हुये जिन्होने प्राण दे दिये परंतु धर्म न छोड़ा । वाहरे बीर पुरुषो क्यों न हो धन्य हैं वह माता जिन के उदर में तुम्हारी ऐसी संतान पैदा हुई । जिन्होने मुसल्मानों के देरे में धर्म से मुंह न मोड़ा । काफिर बनना, टैक्स देना, आपत्ति झेलना, संकट सहना, और कट जाना, खपजाना, प्राण दे देना, स्वीकार किया परन्तु तीन तागे कन्ध से उतार डालना तथा वेद छोड़ कलमा पढ़ना स्वीकार न किया । सब से अधिक कार्य विप्र बंश ने किया । वाहरे ब्रह्मवीर्य ! वाहर सत्व ! क्यों न हो ऐसे आपत्ति कालमें भी साहस न छोड़ा । तुम न होते तो आज भारत में एक भी हिन्दू न रहा होता । एक भी धर्मग्रन्थ देखने को न नसीब होता, भला यह किस से हो सक्ता था कि अपना तन मन धन तथा सर्वस्वदेशरक्षा में लगादे ।

जब ढूंढ़ २ कर धर्म शास्त्र जलाये जाने लगे, ब्राह्मणों ने अनेका नेक ग्रन्थ कण्ठस्थ करके बचा लिये । क्षत्रिय वैश्यों को तथा अन्य प्रजा को धर्म रक्षा के निमित्त उपदेश दे दे कर मुसल्मान राजाओं के प्रतिकूल कर दिया । धन्य है उन्ही के तो वंशज हैं जिनकी बाबत गोस्वामी तुलसीदास यों लिखते हैं ।

"सोइ गोसाइँ जिन विधिगति छेंकी।
सकै को टारि टेक जिन टेकी" ॥

उपदेश का अन्तिम परिणाम यह हुआ कि महाराज शिवा जी नरनाह पैदाही तो हो गया। दादाजी कोणदेव ने शिक्षा दे कर यह बात कूट २ कर उस के चित्त में भसा दी "बेटा मातृभूमि तेरी जननी और धर्म पिता है। हिन्दू भाई और जाति तेरी बहिन है क्षत्राणी का दूध पीकर और मेरा शिष्य हो कर यदि तूने देश, धर्म, जाति और हिन्दुओं के शत्रुओं का सत्यानाश न किया तो तेरा क्षत्रिय कुल में पैदा होनाही वृथा है" उधर कश्यपगोत्रोत्पन्न श्रीमहाकवि भूषण त्रिपाठीजी ने अपनी सोते को जगानेवाली कविता से उस को वीर रस से भर दिया और स्वयं उस के साथ युद्ध में जा २ कर उस की फौज को बढ़ावा देते थे। ईश्वर की दया से शिवाजी ने हिंदुओं की चोटी, बेटी, रोटी, लंगोटी, की भलीभांति रक्षा कर डूबते हुए धर्म को बचा लिया।

(देखिये शिवाबावनी)

कवित्त।

कुम्भकर्ण असुर औतारी अवरंगजेब, कीन्ही क़त्ल मथुरा दुहाई फेरी रबकी। खोदिडारे देवी देव सहर मुहल्ला बांके, लाखों किये म्लेच्छ माला छूटिगई तबकी॥ भूषण भनत भागे काशीपति विश्वनाथ, और कौन गिनती में भूली गति भवकी।

चारौ वर्ण धर्म छोड़ि कलमा निमाजपढ़, शिवाजू न होतो तौ सुनत होत सबकी ॥

देवल गिरावते फिरावते निशान आली, ऐसे डूबे राव राने सबी गये लबकी । गौरा गणपति आप औरन को देत ताप, आपके मकान सब मार गये दबकी ॥ पीरा पैगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत, सिद्ध की सिधाई गई बहै पूर सबकी । काशिहु से कला गई मथुरा मसीद भई, शिवाजी न होतो तौ सुनत होत सबकी ॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर वाड़व सु अम्भ पर, राव ण सदम्भ पर रघुकुल राज है । पौन वारिवाह पर शम्भु रतिनाह पर, ज्यों सहस्रवाह पर राम द्विज राज है ॥ दावा द्रुम दुण्ड पर चीता मृग झुंड पर, भूषण वितुण्ड पर जैसे मृगराज है । तेज तिमि रंस पर कान्हु जिमि कंस पर, त्यों मलेच्छ वंश पर शेर शिवराज है ॥

दक्षिण जीति लियो दलके बल, पश्चिम जीति कै चामर चाख्यो । रूप गुमान हर्यो गुजरात को,

सूरत को रस चूस कै नाख्यो॥ पंजन पेलि मलेच्छ मले सब, सोई बच्यो जिन दीन ह्वै भाख्यो। सो रंग है शिवराजबली, जिन नौरंग में रंग एक न राख्यो॥

गढ़न गँजाय गढ़ धरन धसाय सब, छोड़ि दया धरमै दुआर दै भिखारी से। साह के सपूत पूत वीर शिवराजसिंह, केतेउमराव कीन्हे बन बनचारी से॥ भूषण बखानै केते दिते बन्दीखाने शेख़, सैयद हज़ारों गहे रैयत बज़ारी से। मेहेता से मुग़ल महाजन से महाराज, डांड़ि लीन्हे पकरि पठान पटवारी से॥

दाढ़ी के रखैयन की दाढ़ीसी रहति छाती, बाढ़ी जसुहद मरजाद हिन्दवाने की। काढ़ि गई रैयत के मनकी कसक सब, मिटगई ठसक तमाम तुरकाने की॥ भूषण भनत उर दिल्लीपति धक धक, होत सुनि धाक शिवराज मरदाने की। मोटी भई चंडी बिन चोटी के दलन खाय, खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की॥

वेद राखे विदित पुरान राखे सारसुत, रामनाम राख्यो अति रसना सुघर मैं। हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की, कांधे में जनेऊ राख्यो माला राख्यो गर मैं ॥ मींजि राखे मुग़ुल मरोरि राखे बादशाह बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं। राजन की हद्द राखी तेग़ बल शिवराज, देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं ॥

महाराज शिवाजी के पुत्र महाराज सम्भाजी ने भी अपने प्राणों से अधिक धर्म की रक्षा की है और हिंदू धर्म के वैरी मुसलमानों को उन के अत्याचार का बैना (बदला) भलीभांति दिया है। देखिये-

कवित्त ।

सारस से सूबा करबानक से साहज़ादे, मीर से मुग़ुल मीर धीर में धचै नहीं। बगला से बगस बलूच औ बलख ऐसे, काबिली कुलंग याते रणमें रचै नहीं॥ भूषणजू खेलत सितारे मे सिकार संभा, शिवा को सुवन जाते दुवन बचै नहीं। बाजी सब बाज़की चपेटैं चंग चहूं ओर, तीतर तुरक दिल्ली भीतर बचै नहीं ॥

महाकबि भूषण की कबिता थी कि जादू। पढ़तही वीररस साक्षात् शरीर धारण कर उपस्थित होजाता था। वीर राजपूत

तलवारें खींच २ हाथ उठा उठाकर प्रण करतेथे। "चाहै हिमालय की चोटियां टेढ़ी होकर पृथ्वी पर आजावैं। अथवा चन्द्र सूर्य जो आकाश में हैं पृथ्वी में धस जावें और चाहे दिन की रात होजावै। परन्तु पैर पीछे न धरैं गे चाहै तन की धजी २ उड़जावैं"।

(फ़ौजकी बीरता का भी नमूना देखिये)

छूटत कमान और तीर गोली बानन के, मुस किल होत मुरचानहूं कि ओट में। ताही समय शिवराज हुक्म दैकै हल्ला कीन्ह्यों, दावा बाँध परहलावीर भटजोटमें॥ भूषण भनत तेरी हिम्मत कहांलौ गिनौं, किम्मत इहांलग है जाके भटजोट में। ताव दै दै मूँछन कँगूरन में पांव दै दै, घाव दै दै अरिमुख कूदिपरैं कोट में॥

(और देखिये भूषण ग्रन्थावली में कबि चिरजीव इस विषय पर क्या कहता है)

जौलौं शीस रैहे तौलौं अपनी निबै हैं बीस, बीस बीस कहो पै न नेकु हियहारैंगे। जौलौं चलैं गे नारे गातके हमारे तौलौं, नारे ना कहैंगे चहै मरैं चहै मारैंगे॥ कबि चिरजीव शिरनाय शिवराज भाष्यो, साहू के मनाये हम म्लेच्छानि सँहारैं गे।

जौलौं जान रैहै तौलौं जान नहिं देहैं काहू, नाक-
दम रैहै तौलौं ना कदम टारैंगे ॥

सह्यौ खड्ग बान पैन सह्यौ मान हान नेकौ,
नैसुक बिसारि शिखा सूत्र यश पत्री को। छांड़्यो
सुख सारो पैन छांड़्यो निजधर्म एकौ, देव द्विज
पूजन पुरानी रीति जत्रीको ॥ कबि चिरजीव जीव
तृनके समान जानि, पाल्यो सुपवित्र पन्थ गर्ग
अरु अत्रीको । रीस कीन्ह्यो भले पै न शीस नायो
औरँग को शिवराज उरमें बिचारि गुन त्त्रीको ॥

फिल्ली सरकन लागीं दिल्लीके बसैयनकी,
छागरे न काटै कोऊ आगरे अरत्तालौं । बिललायँ
बीर बैठे बीजापुर बैठकमें, अहमदनगर मदछांड़
फिरै हत्तालौं ॥ कबि चिरजीव शिवराज आज तेरे
त्रास, म्लेच्छन को प्रान भयो पीपर के पत्तालौं ।
चीथडारे लत्ता से चकत्ता यवनौंछे जिन, वीरताकी
सत्ता पहुंचाई कलकत्तालौं ॥

बायें लिखवैयन के बाम विधि होन लागे,
दांये लिखवैयन पै दापसी मढ़ैलगी है गई उदा

सी फेरि मसजिद मक़बनि मैं, मठ मन्दिरनहूं पै रोशनी चढ़ैलगी ॥ कवि चिरजीव शिवराज आज तेरे राज, फेर तुरकाननि की तेजता डढ़ैलगी। भालपर फेर लागे चन्दन चमक देने, फेर शिखा सूत्रन की महिमा बढ़ैलगी ॥

प्यारे मित्रो ! आओ आज सब मिल के ऐसे वीर पुरुषों को गदगद वाणी से धन्यवाद दें जिन्हों ने अपने प्राण अर्पण करके धर्म को जाते २ रखलिया और सब मिलकर वह प्रयत्न करैं जिस में धर्म की रक्षा हो। म्लेच्छोंके अत्याचार के भयसे जिस जिस कुल में जो २ कुरीतियां प्रचलित होगई हैं अथवा यज्ञोपवीतादि संस्कार रुक गये हों, जातीय सभाओं द्वारा सबका उचित प्रवन्ध कर शुभकर्मों की सहायता से एक बार फिर स्वधर्म का पताका स्वदेश पर फहरादें, जिस धर्म के बचाने में हमारे पुरुषों की गरदन पर खचाखच तलवारैं बोलगई उसकी ऐसे समय में भी रक्षा न हुई तो धिक्कार है ! धिक्कार है !! कोटिशः धिक्कार है !!!

(उपनयन विचार)

जब कोई उत्तम से उत्तम बात कुछ काल के लिये छूटजाती है तो स्वभावतः दो प्रकार के प्रश्न होने लगते हैं। प्रथम तो यह कि वह उत्तमोत्तम थी तो छूटजाने का क्या कारण है द्वितीय यह कि अब उसकी आवश्यकता है या नहीं। प्रथम प्रश्नका उत्तर कदाचित् गत कथन से पाठकों को भलीभांति स्पष्ट होगया होगा अब द्वितीय

प्रश्न का उत्तर पुस्तक बढजाने के भय से यथावत् न देकर केवल इतनाही कहताहूं कि यदि द्विज बने रहने की आवश्यकता है, विद्याभ्यास करने, श्रुतिस्मृति पढ़ने, सन्ध्योपासनादि शुभ कर्म करने, यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने और धर्म को जानने की आवश्यकता है तो यज्ञोपवीत की सब से प्रथम है ।

मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौञ्जिवन्धने ।
तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥
मनु० अ० २ श्लो० १६९

"प्रथम माता के गर्भ से उत्पन्न होना पाहिला जन्म कहाता है। मौञ्जिवन्धन अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार होना दूसरा जन्म कहाता है । (इस कारण कि यज्ञोपवीत संस्कार में माता के समान जन्म देकर रक्षा करनेवाली गायत्री और पिता के समान रक्षक आचार्य होता है) और अग्निष्टोमादि यज्ञों की दीक्षा से तीसरा जन्म कहाता है"

अर्थात् मनुष्य जन्म से शूद्र होता है यज्ञोपवीत संस्कार से द्विज तथा द्विजन्मा होता है और जब पूरा विद्वान् होकर भारी यज्ञों के कराने की योग्यता रखता है, सभाओं में उपाधियां पाता है, धर्म और ईश्वर का यथार्थ ज्ञान करता है तब त्रिजन्मा कहलाता है ।

वेदप्रदानादाचार्य्यं पितरं परिचक्षते ।
नह्यस्मिन्युज्यतेकर्म किञ्चिदामौञ्जिवन्धनात् ॥
मनु० अ० २ श्लो० १७१

"वेद के पढ़ाने से आचार्य को पिता कहते हैं क्योंकि मौंजि बन्धन अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार होने के प्रथम बालक को श्रुति स्मृति पढ़ने, सन्ध्योपासनादि कर्म करने का अधिकार नहीं है"

न तिष्ठति तुयः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्य्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥

मनु० अ० २ श्लो० १०३

"जो पुरुष दोनों काल की संध्या और तद्विहित गायत्री जप नहीं करता उसे सम्पूर्ण कर्म द्विजातिसत्कारादि से शूद्र की नाईं बाहर निकाल देना चाहिये"

सन्ध्याहीनोशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ।
यदन्यत्कुरुतेकर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥

दत्त० अ० २ श्लो० २२

"जो मनुष्य सन्ध्याहीन है वह सदा अपवित्र और सब कर्मों के अयोग्य होताहै और उसका कोई कर्म फलदायक नहीं होता" ।

इत्यादि २ अनेक धर्मशास्त्र के प्रमाणों से स्पष्ट है कि द्विज का सब से मुख्य संस्कार उपनयन है । इसी से मनुष्य द्विज होताहै इसी से श्रुतिस्मृति पढ़ने और संध्योपासनादि शुभ कर्म करने का अधिकारी होता है, इसी से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करता, प्रतिष्ठा पाता और सुखभोगता है ।

परन्तु उपनयन के बिना शूद्रत्व को प्राप्त होकर निंदित होता है । न देवता के काम का रहता है न पितरों के, न वेद के काम का

रहता है न भगवान के । और संस्कारों का बिगड़ा इस में सुधर भी सक्ता है परन्तु इस का बिगड़ा जन्म भर नहीं सुधरता ।

"हाथ कंगन को आरसी क्या है" । आंख खोलकर देख लीजिये अभी थोड़े ही समय से द्विजातियों में उपनयन की कमी है । जिस से जाति की जो अवनति हुई है, रोते नहीं बनपड़ता, सँभालते बरसों लगजायँगी, परन्तु यदि अब भी जड़ता ने पिंड न छोड़ा तो दैव जानै जाति की अब और क्या कुगति होनी है ।

कुछ समय हुआ कुछ विरोधी लोग यह बकेत थे कि कलियुग में क्षत्रिय और वैश्यों के यज्ञोपवीत होनेही न चाहिये । सत्त्ययुग व त्रेताके वह क्षत्रिय तथा वैश्य औरहीथे जिनके यहां ब्राह्मणोंका खान पान और सम्बन्ध होताथा । अब क्षत्रिय तथा वैश्य रहेही नहीं सब पतित होगये । इनका यज्ञोपवीत करना महा अन्याय है और जाति के भोलेभाले भाइयोंको बहँकाते थे कि तुमको चाहिये कि जिसरीति पर तुम्हारे बाप दादे चलते चलाते आये हैं उसी पर तुमभी चलो । जनेऊ पहिन कर क्या तुमको ब्राह्मण बनना है । तीन धागे कन्धेपर डालने से क्या किसी को परमपद मिल जायगा । डुपट्टे कांछे अंगौछे में तो उससे कईगुना अधिक सूतहै। तुम बाप दादेकी प्रथाको छोंड़ौगे तो हँसे जाओगे, नक्कू बनोगे । परन्तु छल कपट अधिक दिवस तक नहीं चलता है जैसे २ विद्याका प्रचार होता जाताहै और मनुष्यों का अमान्धकार दूर होता जाता है क्रमशः उसी भांति सुधार होरहा है ।

बुद्धिमानोंको जिन्हें अपने कर्त्तव्य तथा भले बुरेका स्वयंज्ञान है, समझानेकी विशेष आवश्यकता नहींहै । वह स्वयं अपनी त्रुटियोंको पूरी कररहे हैं मेरी विनय उन भाइयों से है जो लकीर के फ़क़ीर हो

रहे हैं । जो जानबूझकर भी सुधारका साहस नहीं प्रकट करते, मूर्खतावश आंखमें पट्टी बांधकर अपनेही हाथ, पांव पर अज्ञानता का कुल्हाड़ा धमक रहे हैं और अपनाही नहीं बरन भावी सन्तान का भी सत्यानाश किये डालते हैं ।

भाइयो ! यदि पुरानी प्रथासे बड़ा प्रेम है तो विचारो तो सही कि पुरानी प्रथा क्या थी ? प्राचीन कालमें कौन द्विज बिना उपनयन के रहताथा ? किस धर्मशास्त्र में और किस प्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थ में वैश्यों को उपनयनकी आज्ञा नहीं है ?

गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
राज्ञामेकादशेसैके विशामेके यथाकुलम् ॥
याज्ञ० अ० १ श्लोक १४

"गर्भ से अथवा जन्मसे आठवें वर्ष ब्राह्मण का, ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष वैश्यका उपनयन प्रत्येकके कुलानुसार करै"

गर्भाऽष्टमेऽब्देकुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशेराज्ञो गर्भात्तुद्वादशेविशः ॥
मनु० अ० २ श्लो० ३६

"गर्भ से आठवें वर्ष ब्राह्मण का, गर्भ से ग्यारहवें क्षत्रिय का, और गर्भ से बारहवें वर्ष वैश्यका उपनयन संस्कार करै" ।

उपर्युक्त अवस्था के प्रथमभी मनु० अ० २ श्लोक ३७ में उपनयन करनेकी आज्ञा है। जिस ब्राह्मण के बालक को विशेष वेदाध्ययन कराने तथा ब्रह्मवर्चस प्राप्त करानेकी इच्छाहो उसका उपनयन पांचवें वर्ष करै इसीप्रकार विशेष बलकी कामना करनेवाले क्षत्रिय का छठे

वर्ष और विशेष व्यापार और कृषि आदिकी इच्छा करनेवाले वैश्य का आठवें वर्ष उपनयन संस्कार करै ।

परन्तु सोलह वर्षतक ब्राह्मण के, बाइस वर्षतक क्षत्रिय के और चौबिस वर्षतक वैश्य के उपनयन कर्म का समय व्यतीत नहीं होताहै। यह मनु० अ० २ श्लो० ३८ का वचन है ।

इस कहेहुये कालके पीछे यह तीनोंवर्ण पतित होजाते हैं और अपने २ समय में संस्कारित न होने से सावित्रीपतित होकर श्रेष्ठ पुरुषों में निन्दित होजातेहैं। और उनकी व्रात्यसंज्ञा होजाती है। यह मनु० अ० २ श्लोक ३९ का वचन है ।

येषांद्विजानांसावित्री नानूच्येतयथाविधि ।
तांश्चारयित्वात्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनाययेत् ॥
मनु० अ० ११ श्लो० १९१

"जिन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों का उपनयन, यथोक्त कालमें नहीं होताहै तिनको तीन प्राजापत्य व्रत करवाके विधिपूर्व्वक उपनयन करवा देवै" ।

इत्यादि २ धर्मशास्त्रके प्रमाण से भलीभांति स्पष्टहै कि वैश्यों के उपनयन का उसी भांति अधिकार है जिस प्रकार ब्राह्मण और क्षत्रियोंको है, और उचितकाल पर यज्ञोपवीत न होने से वह व्रात्य हो जानेपर भी प्रायश्चित्त करके उपनयन करसक्ते हैं ।

अब देखिये वर्त्तमान विद्वानों की उपनयन विषय में क्या अनुमति है ?

श्रीवैश्य महासभा के जनरल सेक्रेटरी रायबहादुर श्रीबैजनाथ बी. ए. फयलो आफ़ दि इलाहाबाद यूनीवर्सिटी एन. डब्ल्यू. पी.

जुडीशल सर्विस ने माघकृष्ण प्रतिपदा भृगुवार संवत् १९५५ को बड़े उत्साह से अनेकानेक भारतप्रख्यात विद्वानों को श्रीकाशीजी में एकत्रित करके सर्व भाइयों के भ्रमनिवारणार्थ सभाकी । और सर्व सम्मति से यह निर्णय होगया कि—

(१) वैश्यलोग अपनी जाति के अनुसार कहेहुये संस्कारों से संस्कृत किये जासक्ते हैं ।

(२) उपनयनादि करके द्विजत्व को प्राप्त हो सक्ते हैं ।

(३) जो संस्कार उचित समय पर न होने से व्रात्य होगये हैं उन के भी संस्कार होसक्ते हैं ।

(४) वैश्यों को संध्योपासनादि नित्यकर्म और ब्रह्मगायत्री का जप करना सर्वथा उचित है ।

उपर्युक्त चारो बातों की सप्रमाण व्यवस्था सहित संध्योपासन विधि श्रीगोस्वामी मधुसूदनलाल जी संग्रहीत विश्वकर्मा यन्त्रालय मथुरा में छपी है । जिसका जी चाहे मंगाकर देख सक्ता है । यहां स्थानाभाव से उसका सविस्तर वर्णन न करके केवल प्रमाण के लिये उन विद्वानों के नाम धन्यवाद पूर्वक स्मरण किये जाते हैं, जिन्हों ने सभा में एकत्रित होकर ऊपर लिखी हुई चारो बातों का निर्णय किया था ।

श्रीमान पण्डित कैलाशचन्द्र शर्मा महामहोपाध्याय । श्रीमान पं० स्वामी राममिश्र शास्त्री महामहोपाध्याय । श्रीमान पण्डित विभवराम शर्मा । श्रीमान पण्डित महादेव स्मृतितीर्थ । श्रीमान पण्डित घनश्याम शर्मा । श्रीमान पं० भागवताचार्य । श्रीमान पं० जगन्नाथ वेदान्ती ।

श्रीमान पं० सुरेन्द्रलाल शर्मा तर्कतीर्थ । श्रीमान पं० प्रियनाथ शर्मा तत्वरत्न । श्रीमान पं० दीनानाथ भट्टाचार्य्य । श्रीमान पं० गणेशचंद्र शर्मा । श्रीमान पं० पीताम्वर देव शर्मा । श्रीमान पं० लक्ष्मण शास्त्री सांख्यतीर्थ । श्रीमान पं० हरिशंकर शर्मा ज्योतिषी । श्रीमान पं० शंकरदत्त शर्मा ज्योतिषी । श्रीमान पं० वैजनाथ शर्मा मालवीय । श्रीमान पं० गंगाधर शर्मा शास्त्री । श्रीमान पं० भवानीदत्त शर्मा दीक्षित । श्रीमान पं० वालमुकुन्द शर्मा मालवीय । श्रीमान पं० हरि शंकर शर्मा । श्रीमान पं० रामदिहल शर्मा । श्रीमान पं० वैजनाथ दीक्षित । श्रीमान पं० लक्ष्मण भट्ट । श्रीमान पं० श्रीकर शास्त्री । श्रीमान पं० संगमलाल शर्मा । श्रीमान पं० हरिहरदत्त शर्मा । श्रीमान पं० भागीरथी प्रसाद शर्मा । श्रीमान पं० अयोध्यानाथ शर्मा । श्रीमान पं० मुकुन्द शास्त्री । श्रीमान पं० विष्णुदत्त शर्मा । श्रीमान पं० ऋषि प्रसाद शर्मा । श्रीमान पं० श्रीकांत झा । श्रीमान पं० सीताराम शास्त्री । श्रीमान पं० गोपाल भट्ट । श्रीमान भट्ट वद्री नाथ शर्मा । श्रीमान पं० गौरीनाथ शास्त्री । श्रीमान पं० अम्बादास शास्त्री । श्रीमान पं० व्रजमोहन पाठक । श्रीमान पं० रघुनाथ शर्मा । श्रीमान पं० जयदेव शर्मा । श्रीमान पं० महिमादत्त पाठक । श्रीमान पं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद शर्मा । श्रीमान पं० मोलकराम शर्मा। श्रीमान पं० अनन्तराम शर्मा । श्रीमान पं० वालभट्ट शर्मा भोकर कर। श्रीमान पं० राजाराम शर्मा धर्माधिकारी । श्रीमान पं० प्रयागदत्त शर्मा । श्री मान पं० हरि शर्मा । श्रीमान पं० दुर्गाशंकर पाठक । श्रीमान पण्डित द्वारकादत्त शर्मा । श्रीमान पण्डित पद्मनाभ शास्त्री । श्रीमान पण्डित मक्खनलाल शर्मा ।

प्रिय वन्धुवर्ग ! विचारो तो सही--यह क्या अनर्थ कर रहे हो

जब व्रात्यों तक के संस्कार करने की धर्मशास्त्र, महर्षियों तथा वर्तमान परम माननीय ब्राह्मण विद्वानों की आज्ञा है तब क्यों हाथ पर हाथ धरे बैठे हो, क्यों नहीं उपनयन करके द्विजत्वको प्राप्त होते। क्यों अपनी संतान को शूद्रवत् बना रक्खा है? उपनयन तथा सन्ध्योपासनादि शुभ कर्म करने से बाप दादे की प्रथा न बिगड़ैगी। बाप दादे सदा परममाननीय जगत् गुरु विद्वान् ब्राह्मणों ही की आज्ञानुसार कर्म करते थे। अतः यदि आप बाप दादे की परिपाटी ग्रहण करनेवाले सच्चे सपूत हैं तो आंख पसार कर चाहै महर्षियों के वाक्य को देखिये और चाहै काशीस्थ सभा में उपस्थित वर्तमान विद्वानों के कथन को देखिये कि वह क्या आज्ञा देते हैं।

परन्तु यदि सदाचारग्रहण ही से द्वेष है, यदि इसी को परम धर्म मानते हो कि बाप चोर था तो बेटा अवश्य चोरी करै, बाप जेलखाने गया था तो बेटा अवश्य जावै, तो भाई ऐसी बुद्धि को बलिहारी है।

हां इतना तो अवश्य कहूंगा कि यदि इतना समझाने पर भी अभी आंखें न खुली हों तो आगे चलकर अब उपनयनमाहात्म्य देखिये, कि यज्ञोपवीत क्या है? इसके धारण करने का क्या प्रभाव है? तीन धागे कितनी त्रिविध शिक्षाओं के सूचक और कितने त्रिविध फलों के दाता हैं।

(उपनयनमाहात्म्य)

मेरे हृदय में अब तक वह बात खरकती है कि यज्ञोपवीत से तो डुपट्टे कांछे अँगौछे में कई गुना सूत है, कन्धे में डालना हो तो वह डालें तीन धागे से क्या होता है ? ऐसी बातें यातो महा मूर्ख धूर्तों की होती हैं या नई रोशनी के बाबू लोगों की, जो अपने धर्म को किञ्चित् मात्र भी नहीं जानते । मैं उनसे पूछताहूं कि ए, बी, सी, डी, में तो २६ अक्षर होते हैं सब के सब कपाल में क्यों नहीं जड़ लेते ? बी. ए. एम्-ए. में तो दोही अक्षर हैं उनके लिये क्यों बरसों नाक घिसते हो । पी. यच्. डी, एल.एल. डी. इत्यादि में तो तीनही अक्षरहैं फिर इनके प्राप्त करने के लिये क्यों दांतों पसीना आता है ? सब के सब अपना वहुमूल्य समय और धन इस के लिये स्वाहा करके क्यों पागल बनते हो ?

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवता इत्यादि में भी तो तीन ही अक्षर हैं और मनुष्य चार अक्षरों पांच तत्वों से बना है यह क्यों नहीं उनसे अधिक हो जाता । वैकुण्ठ भी तीनही अक्षर रखता है, कुम्भी पाक नरक में सात अक्षर हैं, उसीकी क्यों नहीं भावना करते । गधा पोथी लादने से पंडित नहीं हो सक्ता, धोती, कांछा, अँगौछा अधिक सूत के कारण उत्तम नहीं हो सक्ते ।

यज्ञेनसंस्कृतं यज्ञसंस्कृतं यज्ञासंस्कृतञ्चतदुपवीतम् यद्वाउपगुरोःसमीपेवीयते गम्यते येन सा कंतदुपवीतम् यज्ञार्थमुपवीतम् ।

यज्ञ नाम पंचमहायज्ञ वा संस्कारसम्वन्धी हवन के सम्वन्ध से पवित्र किया हुआ उपवीत यज्ञोपवीत कहाता है ।

जिस प्रकार तार में पहिले कुछ भी शक्ति नहीं होती परन्तु जब उसमें विजली का सम्वन्ध होताहै तो अनन्त शक्ति आजाती है। चुटकी बजाते हुये वही तार हाथी को भी मरोड़ सक्ताहै । इसी प्रकार तीन धागे वैदिक मंत्रों और ऋचाओं द्वारा यज्ञ का सम्वन्ध पातेही ऐसे परमपावन शक्तिमान् हो जाते हैं कि शरीर पर पड़तेही उस के कायिक, वाचिक, मानसिक पापों का नाश करके एकबारही कायापलट कर देते हैं । जन्म के शूद्र शरीर को द्विज बना देते हैं ।

क्यों न हो जिस उपवीत को ब्रह्मा ने अपने हाथों से बनाया, विष्णु ने त्रिगुण किया, शिवजी ने ग्रन्थित किया और परम शक्ति गायत्री माता ने अभिमंत्रित किया, उससे क्या नहीं सम्भव है ।

ब्रह्मणोत्पादितंसूत्रं विष्णुनात्रिगुणीकृतम् ।
ग्रथितञ्चत्रिनेत्रेण गायत्र्याचाभि मन्त्रितम् ॥ १ ॥

ब्र० पु०

" यज्ञोपवीत सूत्रको ब्रह्माने बनाया विष्णुने त्रिगुण किया, शिव जीने ग्रंथित किया और परमशक्ति गायत्री मातानेअभिमन्त्रित किया"-

प्रणवः प्रथमे सूत्रे द्वितीयेऽग्निः प्रकीर्तितः ।
तृतीये तक्षकश्चैव चतुर्थे सोम एवच ॥ २ ॥
पंचमे पितृदेवश्च षष्ठेचैव प्रजापतिः ।
सप्तमे वासुदेवश्च अष्टमे रविरेवच ॥ ३ ॥

नवमे सर्व देवाश्च इत्येव नवसूत्रकम् ॥

ब्र० पु० भगवान् प्रति नारद प्रश्न।

" यज्ञोपवीत के प्रत्येक गुण में तीन २ सूत्र होते हैं, इस प्रकार सब नव सूत्र हुये उनमें प्रथम सूत्र में ओंकार का वास है, द्वितीय में अग्नि, त्रितीय में तक्षक, चतुर्थ में सोम, पंचम में पितृदेव, षष्ठमें प्रजा पति, सप्तममें वासुदेव, अष्टममें रवि, नवममें सर्वदेव, निवास करते हैं।

अतः जो मनुष्य ऐसे उपवीत को धारण करता है उसकी सदा यह सब देवता रक्षा करते हैं। विचारने की बात है कि तार में बिजली जो इन्द्र की एक प्रभा है अतुलित शक्ति उत्पन्न करदेती है तो जिस सूत्र से उपर्युक्त देवताओं का सम्बन्ध है उससे क्या नहीं सम्भव है। उसकी महिमा कौन नहीं जानता है।

शरीर पर पड़तेही द्विज बना दिया। सन्ध्या, तर्पण, अग्निहोत्र, का अधिकारी करदिया। जप, तप, यज्ञादि के योग्य बनादिया। देवता ऋषि और पितरों के काम का बना दिया। यदि मनुष्य यज्ञोपवीत (तीन धागे) धारण कर उसके तीनो अंगों १ ब्रह्मचर्य्य २ वेदाध्ययन ३ सन्ध्योपासनादि का साधन करै तो न मालूम कितने तीन प्रकार के फल प्राप्त हों।

तीन धागे के प्रताप से तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) पर अधिकार करलेना, तीनों काल (भूत, भविष्य, वर्त्तमान,) का ज्ञान करलेना, मनकी तीनों शक्तियों (इच्छा, यत्न, कृति,) को स्ववश करलेना, इसी प्रकार तीनों लोक से बढ़जाना, परमात्मा में मिलजाना इत्यादि सब कुछ होसक्ता है।

तीन धागे अनेकानेक तीन प्रकारकी शिक्षा सूचक हैं। तीन धागे बतलाते हैं कि तीनों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य,) का तीनो आश्रम (ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ,*) विधिवत् समयानुसार पालन करना परम कर्तव्यहै। प्रथम में विद्या द्वितीय में धन, कीर्ति, तृतीयमेंधर्म सञ्चय करना उचित है।

तीन धागे बतलाते हैं कि सन्ध्या, तर्पण, अग्निहोत्र नित्य करो।

तीन धागे बतलाते हैं कि माता, पिता, गुरूकी सेवा सर्वदा करो।

तीन धागे बतलाते हैं कि कुटुम्व, जाति, देश, का सदा हितकरो।

तीन धागे बतलाते हैं कि मनपर, वाणीपर, और कर्मों पर अधिकार रक्खो।

तीन धागे बतलाते हैं कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, किसी अवस्थामें ईश्वर, धर्म, और वेद को न भूलो।

तीन धागे बतलाते हैं कि द्विजों की जड़ सन्ध्या है, शाखा वेद है और पत्ते धर्मकर्मादि हैं।

तीन धागे बतलाते हैं कि गायत्री से बढ़कर जप, ब्रह्मचर्य्य से बढ़कर तप और परोपकार से बढ़कर कोई यज्ञ नहीं है।

तीन धागे बतलाते हैं कि संसार के उत्पन्न करनेवाली, पालन करने

---

* समयानुसार वर्त्तमान काल में वाणप्रस्थ साधन केवल स्वार्थ त्यागने से होसक्ता है। जब पूरी विद्या पढ़चुके सन्तान काम काज देखनेवाली होगई तब जाति तथा देशही के अर्थ काम करने में अपना जीवन बितावै, उत्तमोत्तम धर्मशास्त्रों का मनन करना उन्हीं के अनुसार चलना चलाना तथा उपदेश करनाही वाणप्रस्थ साधन है॥

वाली, और नाश करनेवाली, तीनों शक्तियोंके निरूपक हमही हैं, जो द्विज हमारा धारण विधिवत् करता है उसकी तीनों देव, तीनों शक्तियों से, तीनों काल में रक्षा करते हैं ।

इत्यादि २ अनेकानेक तीन तीन बातैं इन्ही तीन धागों से सूचित होती हैं ।

अब बतलाना यहरहा कि तीनों धागे एकमें मिलेहुये क्यों होते हैं, अलग अलग क्यों नहीं होते ? गोलाकार क्यों होते हैं ? चौकुण्ठ अठपहलू इत्यादि क्यों नहीं होते ? कन्धेही पर क्यों पहिने जाते हैं, गले तथा कमर में क्यों नहीं ? विशेष कर बांए कांधेहीपर क्यों पहिनते हैं, दायें पर क्यों नहीं ? लघुशंकादि में कानपर क्यों चढ़ाते हैं ? इन सब बातों का क्या तात्पर्य है ?

तीनों धागे एक में मिले होने का तात्पर्य्य यह है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जिनके यह तीनों धागे निरूपक हैं, पृथक् २ नहीं हैं किन्तु यह तीनों शक्तियां एक जगदाधार परब्रह्म का अंश हैं ।

गोलाकार होना इस बात को सूचित करता है कि जिस प्रकार वृत्त (गोला) का आदि अंत नहीं होता, उसी प्रकार उस परमात्माका आदि अंत नहीं है ।

कन्धे पर पहिरने का अभिप्राय यह है कि जिसमें वाम भाग की अभावात्मक शक्ति का, दक्षिण भागकी सभावात्मक शक्ति से समयोग बनारहै और ऊंचे भाग की आकर्षण शक्ति भी नीचे भाग की निष्कर्षण शक्ति से सम्बन्धित बनी रहै । क्योंकि शरीर में आत्मा का विकास और मन की शुद्धि तभी रहती है जब इन शक्तियों में समभावना रहती है ।

इसी कारण यज्ञोपवीत को कन्धे पर इस प्रकार पहिरते हैं जिस में बायें और दायें नीचे और ऊंचे उभय ओर से इन शक्तियों की समभावना रहै ।

विशेष कर बायें कन्धे पर यज्ञोपवीत धारण करने का कारण यह है कि ऊपरी भाग में जहां आकर्षण शक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान है वहां उपवीत उस भाग पर रहना चाहिये जिस में अभावात्मक शक्ति हो और इस शक्ति की स्थिति वाम भाग में पूर्णतया स्पष्ट है। इसी कारण यज्ञोपवीत वाम भाग पर रखते हैं जिसमे आकषर्ण शक्ति और अभावात्मक शक्ति का परस्पर प्रयोग समभाव बनाये रहै ।

कान पर चढ़ाने का अभिप्राय यह :है कि मलत्याग अथवा लघुशंका के समय निष्कर्षण शक्ति का वेग अधिक होता है अतः उस समय यज्ञोपवीत को उस भाग से स्पर्श भी होने नहीं देते जिस में निष्कर्षण शक्ति का अंश है । क्योंकि उस समय तो समभाव करने के कारण उसका स्पर्श उस अंग से होना चाहिये जिसमें आकर्षण तथा सभावात्मक शक्ति विद्यमान है ।

विद्याध्ययन ।

(पुत्र शिक्षा)

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ।
आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेवच ॥

मनु० अ० २ श्लो० ६९

"गुरु शिष्य को उपनयन संस्कार करा के शौचादिक आचार और सायं प्रातःकाल अग्निहवन सन्ध्योपासनादि कर्म सिखलावै"

यदि उपनयन संस्कार होने के पीछे कोई द्विज यह कर्म न करै तो वह पतित होजाता है। ऐसी मनु भगवान ने अ० २ श्लोक १०३ मे आज्ञा दी है और आपस्तम्ब ऋषि ने कहा है कि गुरु शिष्य को गायत्र्यादि का उपदेश अर्थपूर्वक करै ऐसा न करने से वह दोनो महाघोर अन्धकार को प्राप्त होते हैं।

विद्याभ्यास के बिना यह बातैं असम्भव हैं।

अतः सम्पूर्ण द्विजातियों को उचित है कि बालकों को पांचवर्ष की अवस्था में देवनागरी विद्यारम्भ कराय उपनयन संस्कार के समय तक संस्कृत विद्या में प्रवेश करावैं क्योंकि यज्ञोपवीत होने के दिन से द्विज संज्ञा होने के कारण नित्यकर्म सन्ध्योपासनादि कराना परमावश्यक है। उपनयन संस्कार होने के पश्चात् इतनी तो अवश्य संस्कृत पढ़ानी चाहिये कि वह बालक अपना कर्म धर्म भलीभांति जानकर ग्रहण करै, भ्रम में पड़कर नष्ट भ्रष्ट न होजाय। इस के पीछे इच्छानुसार चाहै जो विद्या पढ़ावै परन्तु मातृभाषा के साथही राजभाषा का ज्ञान भी आवश्यक है। किसी २ का मत है कि वैश्यों को विशेष विद्या की आवश्यकता नहीं है। यह सर्वथा उन की भूल है विद्वान् मनुष्य जिस काम को करैगा अति उत्तमता से करैगा। विद्या का अर्थ ही यथार्थज्ञान प्राप्त करने का है, फिर जब तक हमैं किसी पदार्थ का यथार्थ ज्ञान न होगा तब तक हम उसे काम में कैसे लासक्ते हैं। सच तो यह है कि बिना विद्या के हमारा जीवन निर्वाहही नहीं होसक्ता विद्याही से सर्व सुखों की प्राप्ति हो सक्ती है और इसी से पूर्ण उन्नति होती है।

विद्याददाति विनयंविनयाद्यातिपात्रताम् ।

पात्राद्धनमवाप्नोति धनाद्धर्मन्ततः सुखम् ॥
भो० सा० श्लो० ८४

" विद्या से नम्रता, नम्रतासे योग्यता और योग्यतासे धन प्राप्त होता है । धनसे धर्म बढ़ता है और धर्म से सुखी होता है "

येबालभावेनपठन्ति विद्यां ।
येद्रव्यवन्तः खलुधर्महीनाः ॥
तेशोचनीयाइह जीवलोके ।
मनुष्य रूपेणमृगाश्चरन्ति ॥
भो० सा० श्लो० ८३

" जो मनुष्य बाल्यावस्था में विद्या नहीं सीखते और जो धनवान होकर धर्म नहीं करते वे इस लोकमें मनुष्य का ऐसा स्वरूप धरे पशुओं के समान हैं और शोक के पात्र हैं "

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्यदर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्यनास्त्यन्धएवसः ॥
हितो० मित्र० श्लो० ११

" जो सम्पूर्ण सन्देहोंको मिटाने वाली, परोक्ष अर्थात् अप्रत्यक्ष पदार्थों का ज्ञान करानेवाली और सब जगत् की आंखें हैं ऐसी शास्त्रविद्या जिस के पास नहीं है वह अन्धाही है "

कामधेनुगुणा विद्याह्यकालेफलदायिनी ।

प्रवासेमातृसदृशी विद्या गुप्तंधनंस्मृतम्॥

चाण० नी० अ० ४ श्लो० ५

"कामधेनु के सदृश सर्वदा फल देने वाली और माताके समान विदेश में सब सुखों के देने वाली विद्याही है, विद्या एक प्रकार का गुप्त धन है"

ऋ० मं० १० सू० ७१ मं० ४, यजु० अ० ४ मं० १४, मनु० अ० ६ श्लो० ३०, नी० शा० श्लो० २२६, भर्तृ० नी० शा० श्लो० १२-१३ २०, महा० उ० प० अ० ४४ श्लो० ११, भोज०प्र०सा०श्लो०८

इत्यादि २ विद्या की प्रशंसा के सहस्रों लेख देखने में आते हैं परन्तु सब का वर्णन स्थानाभाव से न करके केवल इतनाही कहता हूं कि-

मातेवरक्षातिपितेवाहितेनियुङ्क्ते।
भार्य्येवचाभिरमयत्यपनीयखेदम्॥
कीर्त्तिश्चदिक्षुविमलाम्वितनोतिचित्तम्।
किंकिंनसाधयतिकल्पलतेवविद्या॥

सुभा० भा० पृ० ३१ श्लोक १९

" विद्या माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हित करके अच्छे कामों में प्रेरणा करती है और स्त्री की भांति चित्त को आनन्द देती और खेद को दूर करती है। कल्पतरु के समान विद्या

क्या २ नहीं सिद्ध करती अर्थात् सब कार्य सिद्ध करती है और सब अभीष्ट देती है ”

(पुत्री शिक्षा)

कुमारीं शिक्षायेद्विद्यांधर्मनीतौ निवेशयेत् ।
द्वयोःकल्याणदाप्रोक्तायाविद्यामधिगच्छति ॥
ततोवरायविदुषे कन्या देयामनीषिभिः ।
एषःसनातनःपन्थाऋषिभिःपरिगीयते ॥

हे० ध० शा०

“ कुमारी कन्या को प्रथम विद्या पढ़ावे और धर्मयुक्त नीति शास्त्रों में प्रवेश करावै क्योंकि जो कुमारी विद्यायुक्त होती है वह पिता और पति दोनों के कुलों को सुख देनेवाली होतीहै, इस प्रकार विद्याप्राप्ति और धर्मशिक्षा होने के पश्चात् विद्वान् बर के साथ उसका बिवाह करै, ऋषियों ने इसको सनातनधर्ममार्ग कहा है ”

परन्तु किसी २ का मत है कि पुत्रियों को पढ़ानाही न चाहिये व्यर्थ परिश्रम से क्या प्रयोजन, वह तो बिराने घरकी होती हैं । कोई कहता है कि पुत्रियां पढ़ाने से स्वतन्त्र हो जायँगी, प्रत्येक प्रकारकी पुस्तकैं बांच कर कुचाली होकर कुल को कलंक से कलंकित करने लगैंगी । परन्तु यह सर्वथा उन का भ्रम है विद्याहीन पुरुष केवल अपनेही तन को हानि पहुंचाता है परन्तु विद्याहीन स्त्री अपने ही को नहीं बरन अपने पिता और पति को दुःख का कारण और अपनी सन्तान के बिगाड़ का हेतु होती है ।

यावन्नसाक्षरा मातातावत्तद्बालबालिकाः ।
निरक्षराहितिष्ठन्तिविनोपायसहस्त्रकैः ॥
भो० सा० श्लो० ६५

" जिन बालकों की माता पढ़ी नहीं होती, वह हजारों उपायके बिना सुधर नहीं सकते, प्रायः मूर्ख ही रह जातेहैं "

नवमृत्स्नांसमादाय सुकरोति यथामति ।
तथैवमातावालश्चभाषयेच्चयथारुचि ॥
भो० सा० श्लो० ६४

" जैसे कुम्हार नई मिट्टी को लेकर जैसा चाहता है वैसा बरतन बना लेता है । इसी प्रकार माता भी बालक को जैसी चाहती है वैसी शिक्षा और भाषा सिखला देती है और उसी के अनुसार वह बालक होता है "

अतः हे प्यारे सुजनो ! यदि सुख चाहते हो, बाल बच्चों की उन्नति की आकांक्षा है, घर बारके सुप्रबन्ध की इच्छाहै, सभ्यता का प्रकाश चाहते हो, सुधार के विकास की आशा रखते हो, घरमें सब से परस्पर मेल चाहते हो तो अपने सुख दुःख के सच्चे साथी तथा अपनेही आधे अंग को सुशिक्षित करदो ।

हे महामहोपाध्याय षट्शास्त्र और वेद के वक्ताओ ! हे एम्. ए. और बी. ए. डिग्रीयाफ्ता लोगो ! हे देशके सभ्य भाइयो ! यदि गृह में आकर उचित सत्कार कराना है, परस्पर वार्त्तालापमें नम्र और

मधुर शुद्धोच्चारित शब्दों से कानों को तृप्त करना है। यदि निरस, निठुर, कटु, कठोर और अश्लील दुर्वाक्य सुननेकी इच्छा अब और नहीं है। यदि परस्पर पूर्ण प्रेम चाहते हो, गृह में देवासुर संग्रामकी भांति प्रति दिन द्वन्द्व मचा रहना प्रिय नहींहै तो भाइयो, सब लोग मिलकर स्त्री जाति को सुधार लो, सुशिक्षित करदो, पढ़ा दो। जिस के प्रभाव से कुबुद्धि का जड़ मूल से नाश हो जाय, भले बुरे का ज्ञान हो जाय, बुद्धि बढ़ जाय, सुविचार और भी दृढ़ हो जायँ, बिचारी अपने २ कर्त्तव्य और धर्मको जानलें और भली भांति समझ लें कि पिताके घरमें कैसा बर्ताव करना चाहिये, पति तथा पतिके कुटु-म्बियों के साथ कैसा व्यवहार उचित है? सास, ननँद, जेठानी, देव रानी आदिक गृह की स्त्रियों से किस प्रकार प्रेम भाव रखैं और पति-व्रत धर्म तथा कुमारिका, बिवाहिता और विधवा धर्म क्याहैं, उनका पालन किस प्रकार होना चाहिये, इत्यादि सब उपयोगी शिक्षा प्राप्त करके उसी के अनुसार करैं, करावैं।

स्त्रियों को पढ़ाने का निषेध कहीं नहीं है। मनु भगवान् ने अध्याय ९ श्लोक ९६ में स्त्री और पुरुष दोनों का समान धर्म कहा है, इसके अतिरिक्त धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में स्त्रियों को अग्नि-होत्र करने और वेद की ऋचायें पढ़ने के प्रमाण मिलते हैं यथा—

गोभि० गृ० सू० प्र० १ कं० ३ सू० १५

में पत्नी को अग्निहोत्र करने की आज्ञा है।

अनुपसर्जनात् अ० ४ प्र० ३ सू० २१ के भाष्य में पातंजलिजीने स्त्री को अध्ययन करने को लिखा है।

वात्स्यायन का० सू० अ० ३ सू० १२ में कन्या को ६४ कलाओं का अभ्यास करने की आज्ञा है ।

पार० गृ० सू० कां० २ कं० १ सू० ९ में स्त्री को गायत्री का उपदेश पाया जाता है ।

गोभि० गृ० सू० प्र० २ कं० ३ सू० ९ में स्त्री को वेद मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करने की आज्ञा है ।

वृह० उ० अ० ८ ब्रा० ४ सूत्र १७ तथा **वृह० उ० अ० ५ ब्रा० ६ तथा वृह० उ० अ० ६ ब्रा० ५** में स्त्रियों का ब्रह्मवादिनी होना तथा वेदवक्री होना पाया जाता है ।

इत्यादि २ नानाप्रकारके प्रमाण धर्मशास्त्रके ग्रन्थों में स्त्री शिक्षा के पाये जाते हैं । लोपामुद्रा ऋषिपत्नी **ऋ० मं० १ अनु० २३ सू० १७९** की प्रचारिका होगई । अपाला नाम ऋषिपत्नी **ऋ० मं० ८ अनु० ६ सू० ९१** की प्रकारिका जगत् विख्यात है । काशिकृष्णी ने मीमांसा शास्त्र को ऐसा पढ़ा कि उसी के नाम से वह मीमांसाशास्त्र काशिकृष्ण कहा गया, इसी प्रकार आपिशल नाम ग्रन्थ आपिशला ऋषिपत्नीके कारण प्रख्यात हुआ है ।

गार्गी का याज्ञवल्क्य ऋषीश्वर को शास्त्रार्थ में परास्त करना **वृह० उ० अ० ६ ब्रा० ५** में स्पष्ट है । मैत्रेयी का ब्रह्मवादिनी होना **वृह० उ० अ० ६ ब्रा० ५** में पाया जाताहै ।

अरुन्धती की लिखी हुई पुस्तक अरुन्धती नामक अब तक विद्वानों के दांत खट्टे कर रही है। लीलावती की बनाई हुई लीलावती अब तक गणित के विद्वानों के छक्के छुड़ाती है। अनसूया जी के सीता जी प्रति उपदेश पढ़कर अब भी धर्मशास्त्र के ज्ञाता दांत में अंगुली दबाते हैं, रुक्मिणी जी की श्रीकृष्ण जी प्रति पत्री पढ़कर अब भी प्रेमी जन गद्गद हो जाते हैं। द्रौपदीकी महाभारतमें अनेक स्थान पर चतुरता, सहनशीलता और पतिप्रेमनिर्वाह पढ़ २ कर सैकड़ों की बुद्धि ठिकाने आजाती है। इनके आतिरिक्त कुन्ती, गांधारी उत्तरा, सत्यरूपा, सावित्री इत्यादि अनेकानेक स्त्रियां महाभारत से राधा, ऊंषा रतिरानी, पद्मिनी, राजा पृथुकी रानी इत्यादि भागवत से और राक्षसों तक की स्त्री मन्दोदरी, सुलोचना, और वानरों की स्त्रियां अंजनी, तारा इत्यादि परिपूर्ण पंडिता पाई जाती हैं।

वर्त्तमान युगमेंभी पण्डिता स्त्रियोंका अभाव न था, भोजप्रवन्धसार देखने से विदित होता है कि राजा भोज के शासन में ऐसी एक भी स्त्री न थी जो कुछ न कुछ पढ़ी न होती। उक्त महाराजका यह कानून था कि जो पुरुष पढ़े न हों वह मस्तक पर चन्दनादिलेपन न करैं, और जो स्त्रियां अनपढ़ी हों वह अपना माथा सूना रक्खैं, लाल काली आदि बिन्दियां केवल पढ़ी स्त्रियां देवैं और मूर्ख स्त्री हों या पुरुष हों या तो बीस कौड़ी रोज दण्ड देवैं और या विद्या पढ़ लेवैं। देखिये

भो० प्र० सा० श्लो० १०८।

उस समय कन्याओं की बड़ी २ पाठशालायें थीं। उज्जैन नगरी में अध्यापिका श्रीमती विद्याधरी, मणिमिश्र जी की स्त्री थीं अकेली दो सौ से अधिक कन्याओं को भली भांति पढ़ाती थीं।

जिसके प्रवन्ध करने की राय मदनमालिनी राजा भोज की रानी की दासी ने जिस प्रकार दी है वह **भो० प्र० सा० श्लो० १११** से भली भांति विदित है। जिस को सुन कर आज कल के बड़ेबड़े प्रोफेसरों को आश्चर्य होता है। विद्योत्तमा शारदानन्दजीकी पुत्री ऐसी पण्डिता थी कि सैकड़ों पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त किया। इस की इच्छा सदा यही थी कि जो मुझ से अधिक या मेरे समान पण्डित हो उसी के साथ मेरा विवाह हो अन्त को उस का विवाह कालिदास से हुआ था जो इसी के प्रताप से महाकवि हो गये।

अभी थोड़े दिनों की बात है कि जब मण्डनमिश्र जी श्रीस्वामी शंकराचार्य जी से शास्त्रार्थ में हारजाने के कारण अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सन्यास धारण करने को उद्यत ही थे कि उसी समय उन की अर्द्धाङ्गिनी श्रीमती उभयभारती देवी ने साक्षात् सरस्वती रूपसे स्वामी शंकराचार्य जी से शास्त्रार्थ कर उन को हरा दिया। और अपने प्राणनाथ को सन्यासी होने से बचा लिया।

भाइयो! क्या आप की स्त्रियां पढ़ी लिखी होंगी तो आप को असमय में काम न आवैंगी, दुःख को बँटा न लेंगी, सुख के अर्थ उद्योग में तुम्हारी सहायक न होंगी, म्लेच्छों के अत्याचार के कारण हमारे यहां बहुत सी खराबियां होगई जैसा कि पीछे बर्णन कर चुके हैं, वही अत्याचार इस स्त्रीशिक्षा का भी बाधक हो गया था परंतु अब श्रीमान् अङ्गरेज बहादुर की राज्य में वह दुःख नहीं है, किसीके साथ कोई अत्याचार नहीं कर सक्ता। अब उचित है कि स्त्री जाति को सुधार लो, परन्तु इस पतित अवस्था में पूर्व समय के अनुसार होना तो बहुत ही कठिन है इस लिये विशेष न हो सके तो कन्याओं

को भी पांच वर्ष की अवस्था से इतनी देवनागरी तथा गणित विद्या तो अवश्य ही अभ्यास करा दो कि भाषा की पुस्तकें तथा सरल सटीक धर्मविषयक पुस्तकें भली भांति पढ़, और समझ सकें और गृहसम्बन्धी आय व्यय—उत्तमता सहित लिख पढ़ सकें । उसी के साथ उत्तम उत्तम चित्रकारी आदि बेल, बूटे, काढ़ना, सीना, पिरोना, कसीदा काढ़ना, सर्व प्रकार के कच्चे पक्के भोजन बनाना, आदि सम्पूर्ण गृहस्थी के काम काज ११-१२ वर्ष की अवस्था तक सिखाय पढ़ाय भली भांति निपुण कर दो । जो पिता हैं वह अपनी पुत्रियों को, जो भाई हैं वह अपनी बहिनों को, और जो पति हैं वह अपनी पत्नियों को, पढ़ाना आरम्भ करदें फिर वह स्त्रियां स्वयं अपनी पुत्रियों व पुत्रवधुओं को सुबोधित करने लगेंगी । और इस भांति सदाचार होकर सम्पूर्ण स्त्रियां पढ़ जावेंगी । और जिन २ स्थानों में कन्याओं की शाला हैं और स्त्रियों द्वाराही उनका उचित प्रबन्ध है वहां भी कन्या भेजने में और शिक्षा दिलाने में कुछ हानि नहीं है । परन्तु स्मरण रहै कि गोरी बीबियों (मेमों) की तरह युवक बाला को स्वतन्त्रता से शाला भेजनेको नहीं कहा जाता है क्योंकि ऐसी बाला यदि पुस्तक ले स्वतन्त्रता से शाला चलेगी तो वह युवकों को भाला हो जावेगी, यदि कामदेव भगवान् कलियुग से मित्रताकर कुछ विघ्न कर बैठें तो कै गज बैठैगी, तो क्या करलोगे ।

बालेपितुर्वशेतिष्ठेत्पाणिग्राहस्ययौवने ।
पुत्राणाम्भर्त्तरिप्रेतेनभजेत्स्त्रीस्वतन्त्रताम् ॥

मनु० अ० ५ श्लो० १४८

"स्त्री बालकपन में पिता के वश में, जवानी में पति के वश में

और पतिके मरने पर पुत्रोंके वशमें रहै परन्तु स्वतन्त्र अर्थात् अपने आधीन कभी भी न रहै"

इस मनु वाक्य के अनुसार स्त्रियों को स्वतन्त्र विचरने की आज्ञा कभी न दो। और उनको देवनागरी की वह पुस्तकें पढ़ाओ जो स्त्रियों को उपयोगीशिक्षाविषयक हों, ईश्वर की कृपासे स्त्रीशिक्षा की बहुत सी पुस्तकें बन गई हैं और बन रही हैं जैसे—

स्त्री सुबोधिनी १=) यह पांच भागों में मुंशी नवलकिशोर के यन्त्रालय में छपी है, अति उत्तम पुस्तक है। स्त्री प्रबोधिनी १) बंबई वेंकटेश्वर यंत्रालयमें छपी है उत्तम पुस्तकहै। वनिताविनोद १) नागरी प्रचारिणी सभा के कई विद्वान् मेम्बरों द्वारा निर्मित, काशीनागरी प्रचारिणी सभा से मिलती है। नारीधर्म विचार ॥) द्वारकाप्रसाद अत्तार बहादुरगंज बाज़ार शाहजहांपूर से मिलती है। कामिनीकल्पद्रुम ॥) बाबू वंशीलालजी वकील कृत, बा० गंगाप्रसाद वर्मा ऐडवोकेट, लखनऊ के यहां से मिलतीहै उत्तम पुस्तक है। सुन्दरीसुधार १)। कन्याहित-कारिणी ।) भाग्यवती ।॥) सीताचरित्र ।॥) स्त्रीसुदशा प्रवर्त्तक ॥) त्रिया तिमिरनाशक ।=)–स्त्रीदर्पण ।=)॥-- पुत्रीशिक्षोपकारी ≡) वनिता बुद्धि प्रकाशिनी ≡)॥--स्त्री धर्मतरंगिणी ।-) --नारीसुदशाप्रवर्त्तक चारों भाग १=)।.

इत्यादि स्त्रीशिक्षा की पुस्तकें यथारुचि मंगाकर स्त्रियों को पढ़ाइये और वेद और धर्मशास्त्र के अविरुद्ध तथा बुद्धि के अनुकूल स्त्रीशिक्षाप्रचार में विलम्ब न करिये। यदि उत्तम विधि के उत्तमग्रन्थों के उचित प्रबन्ध से कन्याओं तथा स्त्रियों को शिक्षा दीजावैगी तो मैं डंके की चोबपर कहताहूं कि स्त्रिया स्वयं बिगड़ना तो बीचरहा, बिगड़े हुये घरको, बिगड़ी हुई गृहस्थी को, बिगड़ी हुई सन्तान को, और

बिगड़ेहुये प्रवन्ध को सुधारलेंगी । कुल को कलंकित करना किस चिड़िया का नाम है पढ़ीस्त्रियां कुलको मंगलांकित शुभांकित और सद्गुणांकित करदेंगी । और भ्रांति जाल में गिरानेवाली दुष्ट, मूर्ख, छली, कपटी, मिथ्यावादी, स्वार्थी, और पाखण्डियों की क्रूरता, धूर्त्तता, छल और पाखण्ड के फन्दे में न पड़कर और उनमें विश्वास न लाकर स्वधर्म-रत होंगी ।

यह कहना कि पुत्रियां इस कारण न पढ़ाई जांय कि वह बिराने घरकी होती हैं अत्यन्त मूर्खता और भ्रम है । उनको इसी कारण अवश्यमेव पढ़ाना चाहिये कि उनको पराए घरजाना है, जहां उनको पहिले सब अपरिचितही मनुष्य मिलतेहैं उन्हीं में उनको रहना, सहना, उठना, बैठना, बोलना, बर्तना और निर्बाह करना है । ससुराल में बहू की सासु, ननद, जेठानी और परोसिन इत्यादि स्वभावतः परीक्षा करती हैं । यदि उठक, वैठक, चाल, ढाल, बोलीबानी, पहिरावा, ओढ़ावा, रीतिभांति, इत्यादि किसी में कुछ त्रुटि हुई तो बात बात में हँसीजाती है, फूहड़ बजती है, मा बापका नाम रखाती है, दुःख उठाती है, अपना हाल माता पिता को लिखतो सकतीही नहीं बात कहनेवाली हो या न हो सभी दूसरों द्वारा कहला भेजती है । जो गली २ प्रकट होजाती है । दुखड़ा रोते नहीं बनता, कष्ट काटे नहीं कटता, माता २ कह सिसकती है, पिता को यादकर आंसू बहाती है । यदि दिन कटा तो रात नहीं, रात कटी तो दिन नहीं, पग २ में उलाहने मिलते हैं । उधर पति सभ्यता चाहता है, स्वच्छता प्रिय है, इधर यह बिचारी अबला अनाथ कुछ भी नहीं जानती । पतिको प्रसन्न करने का कोई भी ढंग नहीं पढ़ा है । न शुद्ध उच्चारण से सुन्दर २ मनोहर शब्दोंही से सत्कार करना जानती है । न सीना, पिरोना, कसीदा काढ़ना, इत्यादि गुण सीखे हैं

कि एक रुमालही बनाकर एक गुलूबन्दही बुनकर अपने प्राणनाथ को नजर करै । भोजन भी अच्छे नहीं बनासक्ती, घरवाले चौके में नाक चढ़ा २ कर बकते झकते हैं, बिचारी बात २ में ठेने सहती है, मनमार २ कर रहती है, हाथ उठा उठाकर ईश्वर से मौत मांगती है, कुढ़ २ कर जीवन समाप्त करती है, और यदि नितकी डांट डपटसे घबड़ा कर कुछ कर बैठी तो दोनों कुल कलंकित होते हैं । यदि कुछ किया भी न, केवल उत्तर प्रतिउत्तर ही देने लगी तब भी घर से मंगल व आनंद का प्रस्थान हो जाता है । नित्य देवासुर संग्राम मचा रहता है, सब प्रकार अनर्थ ही अनर्थ होता है । यदि किसी प्रकार सब संकट झेल कर ऐसी कन्या पुत्रवती होगई तौ भी मूर्खा स्त्री की सन्तान प्रायः कुलकुठार ही होती है ।

सोरठा ।

लागहु त्रिया गुहारि, त्यागहु भ्रम अज्ञान अब ।
जागहु कहौं पुकारि, पागहु अबलन गुणन सब ॥

चौपाई ।

देहु सुभग शिक्षा शुभकारी ।
करहु सुता सुसभ्यगुणवारी ॥
लेहु सुधारि सकल त्रियजाती ।
जो चाहहु आपनि कुशलाती ॥
याही में कल्याण सबनको ।
दुहुँकुल को अरु सुता सुतनको ॥
नातरु वृथा सकल पुरुषारथ ।
एक चक्रको शकट अकारथ ॥

—:*:—:*:—

समावर्त्तन ।

(ब्रह्मचर्य्य का प्रशंसापत्र)

पूर्णतया विद्याध्ययन करने पश्चात् गृह पर लौट आने का नाम समावर्त्तन है। जब द्विजका समावर्त्तन संस्कार होजाय तभी उसको विवाह होने की धर्मशास्त्र की आज्ञा है। जिस प्रकार ग्रेजुएट होने के लिये क्रमशः स्कूल तथा कालेज में पढ़कर बी. ए. तथा एम. ए. पास करना आवश्यक है उसी प्रकार गृहस्थ होने के लिये क्रमशः उपवीत धारण कर ब्रह्मचारी हो वीर्यरक्षा और विद्योपार्ज्जन करके समावर्त्तन करना अत्यावश्यक है। जबतक ब्रह्मचर्य्य और विद्याभ्यास का समावर्त्तन नामक प्रशंसापत्र (सार्टीफ़िकट) न प्राप्त करले गृहस्थ होना उतनाही अन्याय है कि जितना किसी वालक को बिना पढ़े लिखे यूनीवर्सिटी को बीए. तथा एम. ए. का सार्टीफिकट दे देने में होगा। क्योंकि सार्टीफिकट प्राप्त होने पर उसकी गणना तो ग्रेजुएट में होगी और उसी के अनुसार उसको काम सौंपे जायँगे, परन्तु योग्यता वैसे कामों के करने की न होने के कारण सब काम सत्यानाश जावैंगे। इसी प्रकार वीर्यरक्षा तथा विद्याभ्यासादि किये विना समावर्त्तन न करके जो द्विज गृहस्थ बनाया जाता है उससे कुछभी पूरी नहीं परती। न विद्याही आती है, न वीर्यरक्षा ही होती है, और न गृहस्थीही का काम सधता है। क्योंकि सब बातें शरीरकी पुष्टता पर निर्भरहैं। और शरीर की पुष्टता, बल, पराक्रम, साहस, सुन्दरता आदि सब वीर्यरक्षा पर निर्भरहै।

आयुस्तेजोबलं वीर्यं प्रज्ञाश्रीश्च महायशः।

पुण्यञ्च मत्प्रियत्वञ्च हन्यतेऽब्रह्मचर्य्यया ॥

गौत० स्मृ० अ० ४

"आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, शोभा, सौन्दर्य्य, धन, महायश, पुण्य और प्रीति यह सबगुण बिना ब्रह्मचर्य्य साधन के नष्ट होजाते हैं"

आहारशयनब्रह्मचर्य्यैः युक्त्या प्रयोजितैः ।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिवधारणैः ॥

अष्टाङ्ग हृदय० अ० ७ सू० ५१

" आहार निद्रा के सहित ब्रह्मचर्य ही शरीर का आधार है जैसे मकान का आधार खंभे होते हैं उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में ब्रह्मचर्य का खंभा लगाने से अल्पायु कभी नहीं होती है "

चर० चि० अ० १ रसायन पाद ४ में इन्द्रका वाक्य है कि सब पुण्यों से उत्तम पुण्य ब्रह्मचर्य है । पूर्ण आयु का करने वाला, रोगों का नाश करने वाला, तेज कान्ति का बढ़ाने वाला, अकाल मृत्यु से बचाने वाला, कल्याण का करने वाला, शरीरादि की रक्षा करने वाला, और मनको सर्वदा आनन्दमें रखने वाला, ब्रह्मचर्यहीहै। अतः हे भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित, गौतम, आदि महर्षियो! तुम सब ब्रह्मचर्य को धारण करो और प्रजा के सुख के वास्ते संसार में उसका प्रचार करो।

चर० सू० अ० २५ में आयु के हितकारक जितने पदार्थहैं सब में श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य ही को कहा है ।

चर० चि० अ० १ पा० १ में लिखाहै कि जो पुरुष क्रिया-

कुशलता तथा नाना प्रकार के सुखों को भोगना चाहै वह ब्रह्मचर्य सेवन करै।

अथ० कां० ११ अनु० १ व० १४ में लिखा है कि ब्रह्मचर्यके प्रतापसे आचार्य राजा तथा इन्द्र तककी पदवी मिल सकती है।

महा० भा० शां० प० अ० २४३ में लिखाहै कि ब्रह्मचर्यही के प्रताप से महर्षि लोकलोकान्तरों को जीतते थे।

मोक्ष धर्म शत० कां० ११ प्र० ३ ब्रा० ६ कं० २ में लिखा है कि ब्रह्मचर्य धारण करने से किसी प्रकार का दुःख प्राप्त नहीं होता।

धन्य है ब्रह्मचर्य की महिमा जाननेवाले यही महर्षि लोग थे। तभी तो ऐसे २ तेजस्वी, प्रतापवान और आयुष्मान हो गएहैं और ऐसे २ वृहत् कार्य करने लगे हैं कि हम लोग उनकी संतान पढ़ २ कर अचम्भित होते हैं और मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर बतलातेहैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण का वाक्य है कि इन्द्र ने भरद्वाज जी से पूछा कि हे महर्षि आपने तीन जन्म तक विधिवत् ब्रह्मचर्य साधन किया, अब चौथा जन्म मिलने पर आप क्या करेंगे? भरद्वाज जी ने उत्तर दिया कि महाराज! नियम से ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

हा! ब्रह्मचर्य को तीन २ चार २ जन्म तक पालन करके ऋषि लोग नहीं अघाते थे आज उन्हीं के वंशजाद्विज लोग उसको खिलौना जानते हैं। **छां० प्र० ६ खं० १** में श्रीमान् उद्दालक ऋषिका वाक्य है, अपने पुत्र श्वेतकेतु को और कुछ न शिक्षा देकर यही कहते थे कि हे पुत्र तू ब्रह्मचर्य को धारण कर क्योंकि ब्रह्मचर्यको सेवन न करने से मनुष्य वर्णशंकर हो जाता है। और हमारे कुलीन कुलमें आज

तक कोई ऐसा नहीं हुआ कि जिसने ब्रह्मचर्य पालन न किया हो इस लिये तू भी ब्रह्मचर्य धारण कर ।

हा! शोक जिन द्विजों के कुलमें ऐसा कोई भी नहीं होताथा जो ब्रह्मचर्य धारण न करै । उन्ही द्विजों के कुल में आज ऐसा कोई भी नहीं देख पड़ता जो यथावत् ब्रह्मचारी हो इसी लिये न तो किसी में शक्ति है, न उत्साह है, न बल है, न साहस है, न तेज है, न सौंदर्यता है, सच पूछिये तो जैसे गेहूं के सत को घुन खाकर ऊपर से वैसीही ज्योंका त्यों रखकर बेकाम कर देता है उसीप्रकार अवीर्यरक्षा, केवल हड्डी और चमड़े का ढांचा रख, सूरत भयावनी और नाक कान आंख आदि सम्पूर्ण इन्द्रियां निकम्मी करके शरीर को सत्यानाश कर देतीहै । और मूर्ख आलसी क्रोधी निरुद्यमी निर्बल और तेजहीन बना बुद्धि नष्ट कर देती है । सभ्य से असभ्य और दीर्घायु से अल्पायु बना देना तो इसका बांये हाथ का खेल है । परन्तु तौ भी लोग नहीं सोचते जो ब्रह्मचर्य ३६ वर्ष में अथवा १८ वर्ष में होता था और निकृष्ट से निकृष्ट भी नौ वर्ष तक रखकर विद्योपार्जन किया जाता था उसे चुटकी बजाते आध घंटे में करते हैं ।

उपनयन होते ही झट वेदारम्भ कर समावर्त्तन हो जाता है । न वेद पढ़ते देर लगती है न समाप्त करते । बात की बात में ब्रह्मचारी जी साज दिये जाते हैं । सुनार आभूषण, दर्जी कपड़ा पहिराता है । काजर महाउर लगा कर सब शृंगार ठीक हो जाते हैं । यहां तक कुशल है, आश्चर्य नहीं कि महावर के साथ छड़ा कड़ा पायजेब विछियों तक की भी बनआवै, बगल में पोथी दबा दण्ड के दोनों तरफ मिठाई लटका जब यह छवि चलती है उस समय बलि के यज्ञ मण्डप में चलने वाले वामन जी को भी मात करती है । दो पग

चले कि वेदारम्भ हो गया । विद्याध्ययन के वास्ते बाहर जाना बीच रहा, मण्डप के बाहर भी नहीं गये बस समावर्त्तन का सार्टी-फ़िकट मिल गया । फिर क्या पूंछना है, चाहै उसी रात को भांवरैं भी पड़ जायं बिवाह भी हो जाय ।

ब्राह्मणों में अभी इतनी कुशल है कि उपनयन करके तभी बिवाह करते हैं, चाहै यह उपनयन शीघ्र बिवाह ही होने की कांक्षा से क्यों न हुआ हो । परन्तु बहुत से क्षत्रिय और वैश्य भाइयों ने तो यहां तक मेटा है कि उपनयन इत्यादि का नाम भी नहीं लेते । धूमधाम से सजधज कर बिवाह की तैयारी करके जाते हैं । बागमें बिवाह के प्रथम गले में यज्ञोपवीत डाल लेते हैं । बस दुर्गाजनेव हो गया, फिर क्या पूँछना है, भावँरैं भी पड़ गईं । वेदारम्भ और समावर्त्तन वीर्यरक्षा आदि चूल्हेभार में गये ।

कोई २ ऐसे भी महात्मा हैं कि पुत्र कन्या की सगाई अथवा छिदना पैदा होते ही अथवा दो चार वर्ष की अवस्था ही में कर डालते हैं और छोटी सी बहुरिया लाने के हौसले से दुधमुँहा बालक का ब्याह भी कर बैठते हैं । उपनयन वेदारम्भ और समावर्त्तन इत्यादि अलग पड़े सूखा करते हैं ।

इन्हीं सब कुरीतियों को दूर करने के अर्थ श्रीमान् महामहोपाध्याय श्रीस्वामी पण्डित रामभिश्र शास्त्री भूतपूर्व अध्यापक राजकीय संस्कृत कालेज काशी ने (जो कई संस्कृत ग्रन्थों के प्रणेता हैं और बड़े बिचारशील विद्वान् तथा धर्म और देश के हितैषी हैं) प्रयत्न किया है और अति उत्तम सारगर्भित व्यवस्था लिखी है जिस में यह निर्णय कर दिया है कि उपनयन के पश्चात् शीघ्र समावर्त्तन

संस्कार न होना चाहिये किंतु उपनयन के पश्चात् लड़का ब्रह्मचारी रहै और अठारह वर्ष की अवस्था से पहिले न समावर्त्तन हो, न बिवाह हो। यह बिवाहविषय युक्तिप्रमाणों से, सर्व विद्वानों की परीक्षा से, वैद्यक शास्त्र से, और श्रुति स्मृति पुराणों से, सिद्ध हो चुका है अतः वृथा लेख न बढ़ाकर पाठकों से प्रार्थना है कि अपनी२ भूल को स्वयं सुधार कर सुख के भागी हों।

विवाह।

यह वह संयोग है जिस पर सारे जीवन का सुख दुःख निर्भर है। यह वह सम्बन्ध है जिस के बन पड़ने से गृहस्थी में स्वर्ग से भी बढ़ कर आनन्द आता है। और बिगड़ पड़ने से नरक से भी अधिक दुःख झेलना पड़ता है। यह वह गांठ है जो वर कन्या को सारी आयु के लिये ऐसा जकड़कर बांधती है कि फिर किसी प्रकार खुलना असम्भव है। यदि किसी प्रकार बीच में खुलजावै तो सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाती है, बाप दादे का नाम सात पानीसे धो जाताहै, लाज मर्याद का पता नहीं चलता, ज़िन्दगानी का पानी उतर जाता है। सच पूँछो तो प्रलयसा दीखता है।

इसकारण विचारपूर्वक बहुत चतुर और उत्तम २ पुरुषों की सम्मति से देख भाल कर और शोच विचार कर यह गांठ लगाना उचित है।

दोहा।

कुल वय विद्या स्वास्थ्य धन, लखि जे करतविवाह।
वर कन्या सुख पावहीं, सन्तत होत उछाह॥

(कुल)

यह शिक्षा चितमों धरिलीजै ।
ब्याह प्रीति समान सों कीजै ॥

कुलमें केवल इतनाही देखना चाहिये कि इस कुलमें हमारे सम्बन्ध हो सक्ते हैं या नहीं । बहुत से मूर्ख कुल के पीछे प्राण देते हैं, कुलीनता बघारते हैं, समझते हैं कदाचित् ऐसा करने से परमपद उन्हीं को मिल जायगा । आंख मूंद कर घर फूंक तमाशा देखते हैं, कुत्ते की तरह दुतकारे जाते हैं तौ भी पूँछ दबाकर पीछे२ दौड़ते हैं यह नहीं समझते कि—

न जारजातस्य ललाटश्रृंगं कुलप्रसूतेर्नच चन्द्र भालः । यदा यदा मुञ्चति वाक्यवाणं तदा तदा जाति कुलप्रमाणम् ॥

"जो कुलीन कहलाते हैं उन के मस्तक पर चन्द्रमा नहीं होता और जो कुलीन नहीं कहलाते उनके मस्तक पर सींग नहीं होता, जैसा जैसा मनुष्यों का वचन और कर्म हुआ करता है वैसा २ जाति और कुलका भेद गिना जाता है"

बिचारना चाहिये कि सम्बन्ध का अर्थही क्या है ? ऐसा बन्धन जो कि समान में किया जाय वही सम्बंध है, यही मनु भगवान् की आज्ञा है ऐसाही करने में सुख होता है—

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च ।

अप्राप्तामपितां तस्मै कन्यांदद्याद्यथाविधि ॥

मनु० अ० ६ श्लो० ८८

"ऐसे श्रेष्ठ और रूपवान् वर को कन्या तथा कन्या को वर देना चाहिये जो सब बातों में उस के बराबर हों"

नीतिशास्त्र का भी वचन है कि-

"समानशीलव्यसनेषु सख्यमिति"

'अर्थात् एकसे स्वभाव और बराबरवालों में हित बढ़ता है' । स्वभाव और प्रकृति का नियम भी यही है, शारीरिक और आत्मिक दोनो भाव से वर और कन्या का योग पूरा हो इसी का नाम संयोग है, यही परस्पर प्रीति और आनन्द का वर्द्धक होता है ।

(वय)

न्यूनाधिक महँ सुख को नास ।
वाल विवाहे सब विधि त्रास ॥
उचित आयु महँ पूजै आस ।
सन्तति होय सुवुद्धि प्रकास ॥

वर कन्या की वय (अवस्था) का विचार अतिही उपयोगी है । प्रायः ऐसा देखने में आया है कि बड़ी बहू और छोटे बालम । फिर क्या पूँछना है वर कन्या को तो नरक के सामान उपस्थित हो जाते हैं, दुख का वारापार नहीं रहता, गुण मिट्टी में मिल जाते हैं । बहू जी को काम चूर २ किये डालता है । बालम को अभी कुछ ज्ञानही

नहीं है, सोकर चौंकते हैं तो अम्मा २ पुकारते हैं, इधर बहूजी हाथ मल २ पछताती हैं, यौवन व्यर्थ ही बीता जाता है । जब तक बालम सयाने होते हैं तब तक बहूजी की अवस्था खिसकने लगती है । गुण मिट्टी में मिल जाता है, जवानी विरहविथाही में टर होती है । काम देवता की लीला अपरम्पार है, ऋषि मुनियों के आसन डोल गये, फिर अबला अनाथ को अकेले दुकेले मैके ससुरे में बहँका कर सण्डभण्ड कर देना कितनी बड़ी बात है । ऐसी बातों में मर्य्यादा ईश्वर ही के हाथ है । बालक बालपन में बोलता है तो ब्रह्मचर्य का नाश होकर वही दशा होजाती है जैसी किसी वृक्ष या फलकी ऋतु काल से प्रथम फलने या पकने पर होती है अर्थात् युवावस्था में फिर वह पत्नी के काम का नहीं रहता, और यदि वह नहीं बोलता तो बाला का मन कौन समुझावै जिस की छाती में काम की गांसी धँसी है । सब प्रकार आफत है वही मसल है कि "जब जुरता है तब खानेवाले नहीं, जब खानेवाले हुये तब जुरता नहीं"। जब पत्नी को उमंग है तब पति काम के नहीं जब पति काम के हैं तब पत्नी मनकी नहीं ।

ऐसाही दुःख उस बिवाह में भी होता है जब बालकन्या, बूढ़ बाबा को ब्याही जाती है । जब तक कन्या सयानी होती है, पति दो चार वर्ष कामकाज देख भाल चल बसते हैं । पत्नी के मन के हौसले मनही में रह जाते हैं । बालरण्डा होकर सारी उमर दुःख झेलती है ।

इस न्यूनाधिक अवस्था में व्याह का कारण केवल लोभ है । लड़केवाले ने देखा कि घर बना चुना है, धनी है, द्रव्य अच्छी हाथ लगैगी, फिर ऐसा घर मिलै न मिलै । बेटा सयाना होजाय चार

भाई हँसने लगैं कि क्या बात है, सयाना बेटा बैठा है, हो न हो विवाह करही डालैं, जीवन का कौन भरोसा है, रहे रहे न रहे न रहे, बच्चा कुछ ऐसा छोटा भी नहीं है, चार छः वर्ष में सयाना होजावेगा । अच्छे काम नित नहीं आते । लड़कीवाला भी विचारता है कि घर तो अच्छा है, कुल तो श्रेष्ठ है, लड़का छोटा है तो क्या परवाह, समय पाकर सयाना होजायगा ।

हा खेद ! यह नहीं समझते कि बिवाह का अभीष्ट क्या है । सुख के बदले अपनी सन्तान को दुख के फन्दे में जकड़ देते हैं । कोई सेठजी धनी हुआ चाहैं, फिर क्या चाहै शिर भी हिलता हो ८ या १० वर्ष तक की कन्या के साथ बिवाह होजायगा । लड़कीवाला समझैगा कि वर बूढ़ा है तो क्या हुआ कन्या तो सुख में रहैगी । यह न समझैगा कि खून का प्यासा पानी से नहीं अघाता । आंख का काम देखने का है सुन्दर २ दृश्यों के बदले यदि हलुआ पूड़ी कचौड़ी इत्यादि भोजन उसके सामने रक्खेजांय तो तृप्ति नहीं होसक्ती इसी प्रकार सुन्दर २ दृश्यों से पेट भी सन्तुष्ट नहीं होसक्ता । जिस इन्द्रिय को जिस वस्तु की आवश्यकताहै उस को वही मिलने से सुख मिल सक्ता है । अन्यथा कदापि नहीं ।

जाके पैर न जाय बेवाई । सो कसजानै पीरपराई ॥

देखो यह क्या अनर्थ कर रहे हो जवान कन्या को जब जोश आवैगा, जब उस के अंग २ में भगवान् कामदेव के तीक्ष्ण वाण लगैंगे तब क्या सावधान रह सक्ती है, तब क्या यह विचार रहसक्ता है कि मैं कुलीन घर की बेटी हूँ—

तावन्महत्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकता ।

यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हन्तपञ्चेषुपावकः ॥

"तभी तक पाण्डित्य और विवेक रहता है। तभी तक बड़ाई कुलीनता आदि का विचार रहता है। जब तक कामाग्नि नहीं जलती, अंग में उमंग नहीं आती है"

काम के मद मे मतवाली हो बँहक जाय अथवा कोई दुष्ट व्यभिचारी उस को मेला ठेला के बहाने घर, बाहर, रात, बिरात मिल जाय अथवा रात में चोर बन कूदै और काम से दुखित दोनों का मन मिल जाय तो क्या होगा। नंगों का क्या कर लोगे। नालिश करते अथवा गांव में दश भलेमानुषों से कहते भी तो न बन पड़ैगा।

अपनी ही पगड़ी से न्याय कीजिये आपही विचारिये कि इधर आप तो भोजन कर स्त्री के साथ सोवैं और उधर वह विचारी घर के एक कोने में पड़े २ आकाश के तारे गिनै, ऐसी बातों से भला न होगा, उसके मनोवेदनाजनितशाप का परिणाम सर्वदा दुःखदाई है।

जिस प्रकार भयानक यह न्यूनाधिक अवस्थाका बिवाह है उस से भी अधिक विकराल बालविवाह है। सत्य है बाल विवाह के समय किसी ने कहा है—

दोहा।

फूले २ फिरत हैं, आनन्द हिय न समाय।
पायन बेड़ी परत है ढोल बजाय बजाय॥

मनु० अ० श्लो० ९६ में लिखा है।

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः ॥ अर्थात् स्त्रियां सन्ता-

नोत्पत्ति के लिये हैं अतः जब स्त्री पुरुष सन्तानोत्पत्तिके योग्य हों तभी बिवाह करना चाहिये । क्योंकि वाल्यावस्था में बिवाह करने से अनेकानेक हानियां हैं जिनके सबिस्तर वर्णन के वास्ते पृथक् ग्रन्थ चाहिये । स्थानाभाव से यहां संक्षेपतः प्रकट किया जाता है ।

प्रथम यह कि वाल्यावस्था में बिवाह होने से विधवावृद्धि होती है । क्योंकि जितने वालक शिशु अवस्था में मरते हैं उतने कुमारावस्था में नहीं, और जितने कुमारावस्था में मरते हैं उतने किशोरावस्था में नहीं, और जितने किशोरावस्था में मरते हैं उतने युवावस्था में नहीं । यह बात मनुष्यगणना (मर्दुमशुमारी) से भलीभांति विदित होसक्ती है और प्रकृति के नियम (क़ानूनकुदरत) देखने से भी प्रकट है कि आम में जितने बौर लगते हैं उतने सब के सब अंबिये नहीं देते बहुत से बौर गिरजाते हैं । फिर जैसी छोटी २ अंबिया गिरती हैं वैसी बड़ी नहीं । इसी प्रकार जब पूर्णावस्था को प्राप्त होजातीहैं तब बहुतही कम गिराकरती हैं । कारण यह कि जैसे २ आम्रादि फल व मनुष्यादि प्राणी तरुणावस्था को प्राप्त होते हैं वैसे २ प्रौढ़ होजाने के कारण उन को गर्मी सर्दी और हवा हानि नहीं पहुंचासक्ती । किन्तु वे इनको भले प्रकार सहन करलेते हैं । परन्तु बालकों का कोमलअंग होने से उनको कठिन गर्मी सर्दी हानि पहुँचा देती है तथा तरुण मनुष्य के सदृश वालक अपने शरीर की संयमादि से यथावत् रक्षा नहीं कर सक्ते हैं । इत्यादि अनेक कारणों से लड़कपन में वालक बहुत मरते हैं ।

दूसरी हानि यह है कि वाल्यावस्था में जिनका ब्रह्मचर्य्य नष्ट होजाता है वे फिर युवावस्था में किसी काम के नहीं रहते फिर

मदनोत्तेजक वटी अथवा तिला लगाने से वह बात नहीं आसक्ती। वीर्यरक्षा का विशेष वर्णन गत समावर्त्तन विषय में हो चुका है। अतः यहां विशेष वर्णन नहीं किया गया।

तीसरी हानि यह है कि बाल्यावस्था में विवाह होने पर फिर पढ़ने में चित्त नहीं लगता और न विद्या आती है क्योंकि—

चौपाई।

दुइ न होयँ यक संग भुआला।
हँसब ठठाय फुलाउब गाला॥

इधर विद्या पढ़ने में पूर्ण श्रम करना, उधर पशुधर्म से अमूल्य वीर्य का नाश करना, दोनों काम एकसाथ करना दोनों शक्तियों का एक साथ व्यय होना, सत्यानाश कर देता है।

चौथे--विवाहका जो अभीष्ट है वह भी सफल नहीं होता एक तो सन्तान होतीही नहीं, होती है तो अति निर्बल और दुर्बलेन्द्रिय होती है।

पांचवें--वैवाहिक मन्त्रों का अर्थ और अपना कर्त्तव्य न जान कर धर्म नाश करते हैं।

छठे--बालविवाह से सम्पूर्ण चरखा ढीला पड़ जाता है। मनुष्य अल्पायु हो समयसे प्रथम कूचका डंका बजा देताहै। इत्यादि २ अनेकानेक हानियां हैं।

इस कारण जब तक द्विजवंश से बालविवाह और न्यूनाधिक अवस्था का विवाह उठाकर उचित अवस्था के विवाहों का प्रचार न होगा, किसी प्रकार का सुख नहीं हो सक्ता क्योंकि यह केवल बुद्धि ही के प्रतिकूल नहीं हैं किन्तु प्राकृतिक आयुर्वैदिक, वैदिक, राजकीय, सामाजिक और सामयिक इत्यादि सभी नियमों के विरुद्ध हैं।

प्राकृतिक नियम (क़ानूनकुदरत) देखिये तो मनुष्य की कौन कहै वृक्ष भी शीघ्र फलने लगता है तो फल तोड़डारते हैं । यदि ऐसा नहीं करते तो थोड़े ही कालमें यातो वृक्ष सूख जाताहै या बन्ध्या हो जाता है । और यदि फल लगते भी हैं तो छोटे २ लग कर मुरझाकर गिरजाते हैं । आयुर्वैदिक नियमों को देखिये—

सुश्रु० शा० सूत्र १३ में लिखा है कि सोलह वर्ष से पूर्व स्त्री का और २५ वर्ष से पूर्व पुरुष का बीर्य्य कुछ नहीं होता है । इस कारण गर्भाधान न करै यदि कोई करै तो गर्भपात होजाय यदि जीवित रहै तो दुर्बलेन्द्रिय हो ।

सुश्रु० अ० सू० ३५ में लिखा है कि २५ वर्षके पुरुष तथा १६ वर्ष की स्त्री का वीर्य्य समान होने पर गर्भाधान करने के योग्य होता है ।

सुश्रु० सं० शा० अ० १० में लिखा है कि २५ वर्ष का पुरुष और १६ वर्ष की स्त्री का विवाह होना चाहिये ।

चर० चि० अ० ३० में लिखाहै कि यदि न्यूनावस्था की स्त्री मैथुन क्रिया में प्रवृत्त होजाय तो उसके पीठ जंघा आदि अवयव रोग-युक्त होजाते हैं । और गुह्यस्थान दूषित होकर शरीर की सर्वथा हानि होती है । इत्यादि २ अनेकानेक प्रमाण हैं, अब देखिये श्रुति क्या कहती है—

गो० ब्रा० पू० प्र० ३ सू० ९ का वचन है कि वाल्यावस्था में स्त्रियां गर्भाधान के योग्य नहीं होतीं केवल युवावस्थाही में बोया हुआ वीर्य्य सन्तानोत्पत्ति करने में समर्थ होता है ।

ऐ० ब्रा० प्र० ६ अ० ३ सू० ९ कहता है कि पुरुष से छोटी और तरुण स्त्री में गर्भाधान करने से उत्पन्न हुई सन्तान हृष्ट पुष्ट और दीर्घजीवी होती है।

अथ० का० ५ अनु० ५ मं० ८ का वाक्य है ।

" प्रजायैत्वानयामसि "

हे स्त्रि ! सन्तानोत्पत्ति के अर्थ मैं तुझे प्राप्त होताहूं ।

वर्तमान राजकीय नियमानुसार १८ वर्ष तक मनुष्य नाबालिग़ रहता है। उस समय तक उसका कहाहुआ अथवा लिखाहुआ प्रामाणिक नहीं माना जाता क्योंकि उसे इस अवस्था तक अपने भले बुरेका ज्ञान नहीं रहेता । बिचारना चाहिये कि जब नित्यप्रति की छोटी २ बातें न्यूनावस्था की प्रामाणिक नहीं होतीं तो विवाह कार्य्य जो एक जन्म भर के लिये होता है कैसे प्रामाणिक होसक्ता है ।

अब समाज की ओर देखिये अन्य जाति वाले हमपर कैसा कटाक्ष करके कहते हैं कि हिन्दुओं में विवाह तीन प्रकारका होता है । एक माता पिता के वास्ते, दूसरा परोसियों के वास्ते और बिरला वर कन्या के वास्ते—जोबच्चे दुधमुहे विवाह डाले जाते हैं वह विवाह तो माता पिता की प्रसन्नता के वास्ते है । जिसमें आठ दश वर्ष की कन्या बूढ़े बाबा को ब्याही जातीहै उसे पड़ोसियों के वास्ते कहते हैं । और उचित अवस्था पर जो विवाह होताहै वही वर कन्या के वास्ते है।

विचारना चाहिये कि जिस समय जिस वस्तु की इच्छा होती है उसी समय उसके मिलने से आनन्द होता है । और बिना समय के वस्तु मिलनेसे मनको कुछ भी उत्साह और उमंग नहीं होती और न

उस समय किसी प्रकारका आनन्द होता है । जैसे भूख लगने पर रूखी रोटी भी अच्छी लगती है परन्तु बिना भूख के मोहनभोग को भी जी नहीं चाहता । वैसेही छोटे २ पुत्र पुत्रियों को उस दशा में ब्याह डालने से जब न उनकी कामाग्नि प्रकट होती है और न उनका मन उधर जाताहै, कुछ लाभ नहीं होसक्ता । अनुचित अवस्था के विवाह में यदि कुछ लाभ था तो उसी समय था जब मुसल्मानों के अत्याचार से धर्म जाने का भय था । परन्तु अब वह समय नहीं है बुद्धिमान को चाहिये कि देश काल गति के अनुसार कार्य करै ।

देश काल गति के अनुसार ।
बरतें सदा सुबुद्धि उदार ॥
हठी मूर्ख सुख सकत न पाय ।
बांधे मरै कि टका बिकाय ॥

वर्त्तमान काल में अनेकानेक विद्वानों की सम्मति से यह बात निर्णय हो चुकी है कि वर का १८ और कन्या का १२ वर्ष की अवस्थासे कममें विवाह न होना चाहिये अतः विनय है—

गज़ल ।

शुरू जबसे हुई शादीहै कमसिन की ज़माने में ।
हज़ारों बेवा बैठी हैं बुरा जानो तो अच्छा है ॥
निकलना वीर्य का कच्चा घटाना उम्र का समझो ।
चलाना तेग़का सरपर इसे मानो तो अच्छाहै ॥
हैं शादी आज कल देखो बहुत बेजोड़की होती ।

खुशीसे रंज बुलवाना इसे मानो तो अच्छाहै ॥
किया करतेहैं शादी आजकल रुपयों को ठहेराके ।
यह मुफ़लिस आपहीबनना इसे जानोतो अच्छाहै॥
नहींतालीम निसवांका किसीको ख्यालहै बिल्कुल।
निहायत हानिका बायस इसे मानो तो अच्छाहै ॥
यही बायस तवल्लुद जाहिलों औलादका समझो ।
जिहालत दिलमें बढ़जाना इसे जानो तो अच्छाहै॥
अर्ज़ मेरी सकल भ्राता अगर मानो तो अच्छा है।
ज़रर और फ़ायदा अपनेको पहिचानोतो अच्छाहै॥

(विद्या)

विद्या धन संसार में सब धनों से श्रेष्ठ है । राजा अथवा धनी का मान स्वदेश ही में होता है परन्तु विद्वान का मान सर्वत्र होता है । धन सदा सर्वथा साथ नहीं देता परन्तु विद्याधन जीवन पर्यन्त साथ देता है । न चोर चुरा सक्ते हैं, न कोई हिस्सा बटा सक्ता है, न मारने से पासक्ता है, न खरचने से कम होता है । विद्या के लाभ विद्याध्ययन प्रकरण में दिखा चुके हैं, अतः यहां द्वितीय वार वृथा लेख न बढ़ा कर केवल इतनाही कहा है कि इसकी प्रशंसा जो कुछ की जाय सब कम है । विद्वान् कभी दुखी नहीं रह सक्ता अतः सम्बन्ध करने में विद्या देखना अत्यावश्यक है ।

———*———

(स्वास्थ्य)

रोगी दोषी कुमति कुढंगा ।
अंगहीन तजि करिय प्रसंगा ॥

क्योंकि जब स्वास्थ्य नहीं तब जीवन का फल नहीं, अतः वर कन्या उभय पक्ष को इसका विचार चाहिये ।

(धन)

सम्पन्नता भी देखना अति आवश्यक है संसार के सभी काम काज धन के सहारे चलते हैं, कहा है कि—

यस्यार्थास्तस्यमित्राणियस्यार्थास्तस्य वान्धवाः ।
यस्यार्थास्सपुमाँल्लोके यस्यार्थास्सचपण्डितः ॥
पंच० मि० भे० श्लो० ३

"जिसके धन है उसके सब मित्र और सब वांधवहैं, वही संसार में पुरुष है और वही पंडित है" ।

वास्तव में संसार में धन की कुछ ऐसी महिमा है कि धनी पुरुष के अन्य जन भी स्वजन हो जाते हैं और निर्धन के स्वजन भी दुर्जन हो जाते हैं । यह धनही का प्रताप है कि अपूज्य पूजा जाता है, अगम्य के पास गमन किया जाता है और जिसकी वंदना न करनी चाहिये उसकी वंदना की जाती है । स्थानाभाव से धन पर विशेष लेख न लिखकर, केवल यही कहा जाता है कि संसारी सुख अधिकतर इसी पर निर्भर है और विवाह का करना गोया वर

कन्या को संसार में लाना है, अतः ऐसे कार्य में धन का विचार अवश्य २ होना चाहिये ।

दोहा ।

पूर्वलिखित गुण पांचलखि, करिय विवाह विचार।
निम्नलिखितपुनिपांचकर, कीजियउचितसुधार॥

चौपाई ।

नाच रंग अरु आतशबाजी ।
मांग जांच बरात बहु साजी॥
ठहरौनी विचार चित दीजै ।
करि सुधार जग मों यश लीजै॥

(नाच रंग)

प्रायः नाचरंग को लोग विवाह का विशेष अंग मानते हैं। बरात में चाहै जैसे सुयोग्य सम्बंधी तथा मित्र एकत्र हों । चाहै जैसे विद्वान् तथा गुणवान विद्यमान हों । परंतु यदि एक व्यभिचारिणी अनेकघर घालिनी पापिनी न हो तो सब वृथाहै, यदि भांड़ भडुहे अश्लील वाक्यों से उन्हीकी नकल न करैं तो आनंद न आवै, यदि सुंदर २ नम्रताविषयक श्लोकों अथवा उपयोगी व्याख्यानों के स्थान में भरी सभामें गालियां न बकी जावें तो श्रवण तृप्त न हों, यदि रंडियां अपने हावभाव कटाक्ष से सभा में उपस्थित दो चार अल्हड़ नवयुवकों की शिकार न करें तो यश न हो, यदि उनको धन देकर देशमें अतिनिंदनीय हाट स्थापित न की जाय तो देशोद्धार में त्रुटि रह जावै और यदि उनके

द्वारा हिन्दू भाइयों की कमाई शराब कवाब और गोमांस खरीदने में न लगै तो पितर क्योंकर तर सकैं ।

विचार शील सज्जनो ! टुक ध्यान तो दो यह क्या अनर्थ होरहा है? क्यों अपने धर्म कर्म को भूल कर वृथा धन फूंक रहेहो? और क्यों अपनी होनहार सन्तान को विषय के जाल में फँसाने का ढंग अपने हाथही रचरहे हो।

अभी तो आपको इसकी कुछ विशेष परवाह नहीं है परन्तु इसका असर लड़के, पोतोंपर क्या होगा इसकी भी कुछ खबर होनी चाहिये। पिता से भी हर बात में बढ़जाने की इच्छा रखनेवाले पुत्र, नाच रंग में चौगुना चाव प्रकट करैंगे और प्रपौत्र घर फूंक तमाशा देखैंगे। जितनेही अधिक डेरेहों, जितनाही अधिक रोजाने का नाच हो उतनाही अधिक अपनी नामवरी समझैंगे। फलाने के बेटे और फलाने के पोते होकर यदि सामान्य मनुष्यों से बढ़कर नाच न मंगावैंगे तो क्या बाप दादे का नाम न रक्खा जायगा? हंसी न होगी? पास नहीं है तो उधार व्यवहार सही--लड़के लड़की का काम काज कहीं रोज होता है। इत्यादि २ विचारों में पड़कर ख़राब होंगे।

" ख़रबूजा देखकर ख़रबूजा रंग पकड़ता है " दो की देखादेखी चार और चारसे आठ--इसी प्रकार समस्त देश भाई इस कुरीति के पंजे में फँस जायँगे और वृथा धन का सत्यानाश कर लोक और पर-लोक दोनों के बिगाड़ का कारण होंगे।

फिर जब इस पेशे की क़दर आप लोगों में इतनी होगी तो कदाचित् अगणित वेश्यायें तैयार होकर मनुष्यों को तबाह कर देंगी और उनके आचरण मिट्टी में मिला देंगी। व्यभिचार की सीमा का भी वारापार न रहैगा।

इत्यादि २ अनेक हानियां होंगी, जिनके ब्यौरेवार कहने की कोई आवश्यकता नहीं विदित होती, क्योंकि वेश्याओं को बुलाना प्रायः सभी विचारवान पुरुष निन्दनीय समझने लगे हैं और पुरानी प्रथा के प्रेमी भी इतना तो अवश्य कहने लगे हैं कि वेश्या बुलाने से वास्तव में कोई लाभ तो है नहीं, केवल दिल बहलाने के लिये यह काम किया जाता है। चार-छा इष्टमित्र तथा वन्धुवर्ग एकात्रित होते हैं, उनका ध्यान आकर्षित करने के निमित्त कुछ न कुछ कौतूहल होना अवश्य चाहिये।

वास्तव में इसका अभिप्राय भी ऐसाही या इस से कुछ मिलता जुलता होगा, परन्तु हमारे यहां लोग किसी कार्य के अभिप्राय अथवा परिणाम पर विशेषतः ध्यान न देकर देखादेखी अन्धपरम्परा के अनुयायी होकर लकीर के फ़क़ीर बन बैठते हैं। और यही कारणहै कि कोई सुरीति भी समयानुसार कुरीति होकर हानिकारक हो जाती है तो भी उससे मुख नहीं मोड़ते।

इतिहासों के देखने से विदित होता है कि प्राचीन कालमें जब किसी उत्सव या यज्ञ में द्विज समुदाय एकत्रित होतेथे तब उपयोगी कार्यों के प्रस्ताव पेश होते थे। राजाओं की सभा में मंगलामुखियों के नृत्य का भी पता लगताहै। परन्तु इस का मुख्य अभिप्राय संगीत-विद्या की रक्षा तथा उन्नति करने का था। क्योंकि साधारण कहने से किसी बात का मनुष्यों के हृदय पर वैसा असर नहीं पड़ता जैसाकि गानविद्या से होता है। यही कारणहै कि अब भी सभाओं में भजन मण्डली की आवश्यकता होतीहै। जिस विषयको विद्वान् लोग विचारते हैं भजन मण्डली सर्व साधारण के दिल पर उसका नक्स कर देती है

और थोड़े समय के वास्ते दर्शक लोगों का ध्यान भी दूसरी ओर आकर्षित होजाता है ।

प्राचीन काल की मंगलामुखियों का भी इसी प्रकार का कार्य था । उत्तम २ उपदेशयुक्त भजनों और लीलाओंका शुद्धभाव दर्शकों के हृदय पर पूरा २ जमा देती थीं, कहीं एक भी प्रमाण इस बात का नहीं मिलता कि यह मंगलामुखी वर्त्तमान समय की वेश्याओं की भांति व्यभिचार का बाज़ार गर्म रखती थीं, लोगों को अपने फन्दे में फँसाने ही के अर्थ रात्रिदिन उपाय करती थीं, केवल धन खींचनाही अभीष्ट था ।

कहीं २ कथाओं में अप्सराओं द्वारा मुनियों का तप भंग करना अथवा तेजहत होना भी पाया जाता है परन्तु वह भावही दूसरा है । अप्सराओं की गणना देवयोनि अर्थात् शक्ति में है । किसीशक्ति का मनके विचार बदल देना, मनुष्य योनि के कुमार्ग की समता नहीं रख सक्ता है । परन्तु यदि अप्सराओं में शक्ति भाव न माना जाय तो भी इस से यह नहीं सिद्ध होता है कि उनका व्यवसायही यह था कि तेजवान पुरुषों का तेज हत करैं अथवा निज शरीर को सर्व साधारण के हाथ बेचैं । किन्तु जब उनको कभी किसी का सत बिगाड़ने को इन्द्र भगवानकी आज्ञा होती थी तो ऐसा करने में उन्हें बड़ा संकोच और भय होता था, यह न था कि डंके की चोबपर शरीफों के लड़कों को सण्ड भण्ड करने में दत्तचित्त मग्न रहती हों और निन्दित कार्य करने पर देवयोनि होने पर भी वहुधा अप्सराओं को बड़े २ दण्ड झेलने पड़े हैं । परन्तु हाय ! इन मनुष्य योनि वेश्याओं को, जिनका सदा यही काम रहता है, कोई भी दण्ड देने वाला सिंह पुरुष दिखाई नहीं देता । हा ! इनके कुसंग से संगीत

विद्या की भी कैसी दुर्गति होरही है । कैसा शुद्ध शास्त्र किस नीच दृष्टि से देखा जाने लगा ।

जितने देश सभ्य हैं सभी में संगीत विद्या का आदर है और प्रायः भद्र पुरुष विशेष कर इसे जानते हैं । हमारे यहां किसी समय इसकी इतनी प्रतिष्ठा थी कि स्वयं महाराज भर्तृहरिजी ने कहा है—

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः । तृणन्नखादन्नपिजीवमान स्तद्भाग्यधेयम्परमम्पशूनाम् ॥

भर्तृ० नी० श्लो० १२

"साहित्य और संगीत शास्त्र की कला से जो पुरुष हीन है वह साक्षात् बे पूँछ और सींग का पशु है, तृण नहीं खाता और जीता है यह उस पशु का परम भाग्य है"

क्याही अच्छा हो यदि आप सब महात्मा भर्तृहरि जीके अनुसार मनुष्य बनने का उद्योग करके संगीतविद्या को पूर्वपुरुषों की भांति आदर दें । और इसे नीच संग से उबार कर इस के दोषों को दूर करदें । वेश्याओं का नृत्य और गान एकदम बंदकरके विद्वानों की उपदेशयुक्त अमृतमय वाणी को श्रवण करैं । विवाह ऐसे परमोत्सव में जहां जाति के सब प्रकार के मनुष्य तथा अन्य सुयोग्य पुरुष विद्यमान हों, उत्तमोत्तम जातिसुधार तथा उन्नति के सर्वोपकारी प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाया करैं । उनपर विचार किया जाया करै । कुरीतियों के त्याग और सुरीतियों के ग्रहण करने को उपदेश हुआ करैं । जातीय सभा अथवा धर्म सभा के उपदेशक उत्तम व्याख्यान

दिया करैं। और आवश्यकतानुसार स्वयं संगीत विद्या के सहारे अथवा भजनमण्डलियों द्वारा समय २ पर इसका भाव मनुष्यों के हृदयगत कर दिया करैं। ऐसा करने से चित्त आकर्षित होने के अतिरिक्त बड़ा लाभ यह होगा कि—

(१) संगीतविद्या कुसंग से छूट कर श्रेष्ठ पुरुषों में आदर पावैगी।

(२) बुरे राग जो एक प्रकार से संगीत विद्या के दूषण हो रहे हैं उससे निकाले जाकर सुन्दर २ उपदेश स्वागत पावैंगे।

(३) भोले भाले युवक विषय जाल के फंदेकी शिकार होकर नष्ट भ्रष्ट न होंगे।

(४) देश भाइयोंका धन सत्यानाश न होगा।

(५) धीरे २ व्यभिचार की दूकान बन्द होजावैगी।

(आतशबाजी)

यदि रुपिया फूँकना किसी वस्तु का नाम है तो वह आतशबाजी ही है। हज़ारों रुपिये दमभरमें चटापट होजाते हैं। यद्यपि यह रीति कुछ ऐसी बुरी नहीं है जैसा कि वेश्याओं का नाच है, जिसमें लौकिक पारलौकिक सभी हानियां हैं, तथापि इसके अपव्यय होने में सन्देह नहीं है। आतशबाजी यदि थोड़ी हो तो कुछ विशेष हानि नहीं, क्योंकि यह एक प्रकार का कौतूहल है। परन्तु इस में अथवा फूलफुलवाड़ी में अधिक द्रव्य फूँकना तथा लुटाना अनुचित है। यदि इस फंडका धन किसी उपयोगी कार्य, जाति तथा देशके हित में लगै तो अति उत्तम हो।

(असबाब की मांग जांच)

प्रायः देखा गया है कि लोग विवाहकाज में मांग जांच से

नहीं अघाते। जिस को जितनाही असबाब मांगने पर मिल सके उसकी उतनीही अधिक शोभा समझते हैं, परन्तु जितना कष्ट और भय इस में है कदाचित् विवाह की किसी कार्यवाही में न होगा।

मांगजांच की सीमा यहां तक बढ़ी हुई है कि मनुष्य अपनी मर्य्याद (हैसियत) के कई गुने अधिक कीमती असबाब मांग लेते हैं, यदि कहा जाय कि बिराने दरवाजेपर जानाहै अपनी २ मर्याद तथा शोभा बढ़ाने को क्या नहीं किया जाता, तो यह सर्वथा भूल है क्योंकि प्रायः यह सभी जानतेहैं कि विवाह में असबाब मांग काहै। चाहै उसमें अधिकांश घरही का क्यों न हो।

अतः उचित है कि असबाब पराया उतनाही मांग कर लेजांय जितना आवश्यक हो और चट औचट पड़ने से जिस के कारण अपनी हैसियत न बिगड़े। स्मरण रहै कि बनावट सब प्रकार की बुरी होती है।

(बरात में अधिक मनुष्य)

चाहै किसी समय में उसकी आवश्यकता हो परन्तु वर्त्तमान समय में कुछ भी नहीं है। अधिक मनुष्य लेजाने से केवल व्यय ही अधिक नहीं होता किन्तु सुख भी किसी को नहीं होता, न लड़कीवाले को न लड़कावाले को और न बरातियोंही को—मसल है कि "साग छौंका जासक्ता है भुसौरा नहीं" जो सत्कार थोड़े मनुष्यों का होसक्ता है वह अधिक का कदापि नहीं। बरातियों को निमन्त्रण देकर बुला कर ले जाने पर यदि उन को केवल मार्गश्रमही दियागया और कुछ सत्कार न हुआ तो भी बुरा लगता है। इसदशामें प्रायः लड़की लड़का-वालों से अनबन होजाती है और फसाद की नौबत पहुँचजाती है।

अतः लड़केवाले को उचित है कि लड़कीवाले की सामर्थ्यानुसार बरात ले जावै, जिस में परस्पर प्रेम में किसी प्रकार की बाधा न पड़े और सब को सुख मिलै ।

(ठहरौनी)

धीरे २ यह कुरीति सब जगह फैलगई । लोग इस (करार दाद) को अपनी मर्य्याद समझने लगे परन्तु वह सर्वथा उनकी भूल है । जिन २ जातियों में इसका अधिक संचार है, उनकी दशा प्रायः शोचनीय होरही है । जहां रुपिये पैसे की कौन कहै एक मठुलिया कम हो जाने से जूतीपैजार होती है । कुलीन से कुलीन घर की बेटी धन का अभाव होने से बैठे २ बूढ़ी होजाती है, अथवा अंध पंगु इत्यादि वर को जहां दायज कमदेना पड़े ब्याही जाती है । नेगों के बरतने में वह झगड़े पड़ते हैं कि परस्पर स्नेह का अंकुर टूट जाता है और सम्बन्धियों में शत्रुता हो जाती है और यहांतक देखागया है कि बरात बिना ब्याह हुये लौट आती है । विचारशील सज्जनो ! जिसने आप को निज प्राणप्रिय कन्या दी वह ऐसा क्या मूर्ख होगा जो अपनी सामर्थ्यानुसार अपनी कन्या को भूषण वसन न देगा अथवा अपने जीतेजी आपका सत्कार न करेगा । तिस पर भी यदि आप अपने सम्बन्धी की मर्य्याद ले लेने का उद्योग करैं तो संसार आप को क्या कहैगा ।

स्मरण रहै कि यह पापिनी ठहरौनी अर्थात् पुत्रका बेंचना किसी प्रकार कन्या बेंचने से न्यून नहीं है इस को अपने यहां कदापि स्थान न देना चाहिये ।

भावी विषय विहार ।

प्रिय पाठक ! यह न समझना कि विवाह करके अब छुटकारा पागये, अब कोई कृत्य बाकी नहीं रहा । स्मरण रहे कि सब से कठिन काम अब गृहाश्रमका आपके सामने है। स्त्री, पुत्र, इष्ट, मित्र, बन्धु, वान्धव आदि का भार आप के शिर पर है । भारत जननी, धर्म पिता और भगिनी रूप जाति आपही के सहारे है ।

" हाथी के पैर में सबका पैर है " सपूतकी कमाई में सबका भाग है। अतः उस रीति से गृहस्थाश्रम चलाना है, धन कमाना और सबको पालना है जिस में सबका कल्याण हो ।

गृहस्थ को धन कमाने के निमित्त कैसा व्यवसाय करना चाहिये जिस में अपने भलेके साथ देश भाइयों का भी भला हो जिसमें अपनी उन्नति के साथ देश कलाकौशल और विद्या की भी उन्नति हो और जिस से अपनी वृद्धि के साथ देश की भी द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़े ।

वर्त्तमान समय में देश और काल गति के अनुसार प्राचीन व्यवसायों में कैसे सुधार की आवश्यकता है ? उससे कैसे २ लाभ की सम्भावना है ? धनका अभीष्ट क्या है ? अर्थ धर्म शास्त्रानुसार रुपये का प्रयोजन क्या है ? उसका प्रचार और उसका बर्त्ताव, उस की आय और उसका व्यय किस प्रकार होना चाहिये ? आय चाहे जैसी उत्तम हो परन्तु व्यय उचित न होने से किस प्रकार सब नष्ट हो जाती है ? किस प्रकार व्ययका विषय उपार्जन के समान विचार-णीय है ? परस्पर दोनोंमें कार्य और कारण का सम्बन्ध किस प्रकार है ? व्यय कैसा, कितना और किस प्रकार करना चाहिये ? सुव्यय से क्या २ लाभ और अपव्यय से क्या हानियां हैं ? किस प्रकार का

व्यय सुव्यय और किस प्रकार का व्यय अपव्यय कहा जासक्ता है ? विदेशी पदार्थों के बर्तने में, अविचारित दान में, मादक पदार्थों के सेवन में, बनावट में, नौवाबी और ठमकमें, नाच रंग तमाशादि में, आलस्य और वृथा समय नष्ट करने में, कैसा महान् अपव्यय होरहा है इसका प्रबन्ध किस प्रकार होना चाहिये ? किस प्रकार आर्थिक दशा सुधर सक्ती है ? और देश का उद्धार होसक्ता है ?

उपर्य्युक्त बातों का भार तथा विचार आपही पर न छोड़कर यह "विभूषण" आपका सच्चा सहायक उपस्थित है । कृपया इस के तीसरे भाग की शिक्षा के विहार से आर्थिक सुधार करके जीवनकी बहार देखिये ।

इतिश्री वैश्यवंशविभूषणे द्वितीयोभागः ।

ॐ

श्रीवैश्यवंशविभूषण

तृतीय भाग

गृहस्थाश्रम।

यथावायुंसमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथागृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वआश्रमाः॥
मनु० अ० ३ श्लो० ७७

"जैसे प्राणवायु के आश्रय हो के सम्पूर्ण प्राणी जीते हैं वैसेही गृहस्थाश्रम के आश्रय हो के सब आश्रम निर्वाह करते हैं"

यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणोज्ञानेनान्नेनचान्वहम्।
गृहस्थेनैवधार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमोगृही॥
मनु० अ० ३ श्लो० ७८

"जिस से तीनों आश्रम (ब्रह्मचर्य-वाणप्रस्थ-सन्यास) दान और अन्नादि पाकर निर्वाह करते हैं इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रमहै अर्थात् सब व्यवहारों में धुरंधर है"

ससंधार्य्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखञ्चेहेच्छता नित्यंयोऽधार्य्योदुर्बलेन्द्रियैः ॥
मनु० अ० ३ श्लो० ७९

"इस लिये मोक्ष, और संसार के सुख की इच्छा करनेवाला प्रयत्न से गृहाश्रम को धारण करे जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और दुर्बल पुरुषों से धारण करने में अयोग्य है उसको अच्छे प्रकार धारण करै"

उपर्युक्त मनु भगवान् के वाक्यों से भली भांति स्पष्ट है कि संसार में जितना कुछ व्यवहार है सब का आधार गृहस्थाश्रम है। इस को विधिवत् नियमानुसार धारण करने से मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों में सुख पाता है यही बात मनोविज्ञानशास्त्र (साइकालोजी) और दर्शन शास्त्र (फिलासोफी) इत्यादि शास्त्रों से भी सिद्ध होती है कि मनुष्य को पूर्ण मनुष्य होने के निमित्त गृहस्थ और कामकाजी होने की परमावश्यकता है ।

मनुष्य में दो वस्तु प्रधान मानी गई हैं प्रथम शरीर (Body) द्वितीय मन (Mind) एवं उसकी प्रकृति भी शारीरिक (Physical) और मानसिक (Intellectual) का संयोग होती है और इसी के अनुसार उसकी आवश्यकतायें हैं । जिस प्रकार मानसिक आवश्यकतायें विद्याध्ययन से पूरी होती हैं उसी प्रकार शारीरिक गृहस्थी से पूर्ण होती हैं । विद्या मानसिक शक्तियों को पालन पोषण करके उन्नति करती है और गृहस्थी अपने काम काजसे वह २ पदार्थ बनाती, पैदा करती, कमाती, और जमा करती है कि जिन

से शरीर की रक्षा, और उन्नति होती और सुख मिलता है अतः विद्वान् ब्रह्मचारी को कामकाजी गृहस्थ होनेकी वैसीही आवश्यकता है जैसी कि गृहस्थी के प्रथम विद्योपार्जन की बतलाई जाचुकी है ।

व्यवसायचिन्तन ।

गृहस्थाश्रम में आतेही सब से प्रथम इस बात की चिन्ता होती है कि हमारा व्यवसाय क्या होना चाहिये। यह विषय ऐसा गंभीर और सारगर्भित है कि प्रथम जितनी दूरदर्शिता और विचारसे काम लिया जाय उतनाही अधिक फल होता है । देश और कालगति का विचार इस से सदा सर्वदा उपयोगी है । जिस व्यवसाय से अपना तथा अपने देश भाइयों का लाभ हो, जिस से अपने देश की कला कौशल तथा विद्या की उन्नति रहै, जिस से अपनी वृद्धि के साथ देश की भी द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़ै वही शिष्ट पुरुषों के करने योग्य है । उसी को विचारवान् पुरुष अपने जीवन का आधार बनाते हैं ।

जिस व्यवसाय से अपने देशकी किञ्चित् भी हानि हो, जो अपने को लाभकारी हो परन्तु देश भाइयों को हानिकारक हो, जो झूठ और फरेब के बिना चलही न सक्ता हो, जो सभ्यता के विपरीत हो और देशोन्नति का बाधक हो, वह व्यवसाय महानिन्द्य और अग्राह्यहै।

(लाभ विवरण)

व्यवसाय का अभीष्ट प्रायः लाभही हुआ करता है अतः प्रथम लाभ ही पर विचार किया जाता है तत्पश्चात् व्यवसायों पर विचार किया जावैगा ।

लाभ तीन प्रकार के होते हैं—

(१) वर्द्धमान लाभ (Increasing returns)

(२) स्थिर लाभ (constant returns)

(३) क्षीयमान लाभ (Diminshing returns)

वर्द्धमान लाभ का तात्पर्य यह है कि जितनाही अधिक द्रव्य किसी काम में लगाया जावै प्रति रुपया उतनाही अधिक परता उस काम में पड़े। जैसे यदि किसी दश पृष्ठ वाली पुस्तक की ५०० प्रतियां छपाने से व्यय २५) होता है तो कदाचित् वही प्रतियां १००० छपाने से चालीसही रुपये पड़ैंगे और यदि वही २००० प्रतियां छपाई जावैं तो साठ ही रुपये में बन जावैंगी। अतः प्रथम वार प्रति रुपया हमको २० प्रतियां पड़ीं, दूसरी बार २५ और तीसरी वार ३३$\frac{1}{3}$ प्रतियां पड़ीं जिस में प्रति रुपया लाभ का परता बढ़ता गया।

स्थिर लाभ का अभिप्राय यह है कि चाहे जितना न्यूनाधिक व्यय किसी कार्य पर किया जाय पर लाभ का परता प्रति मुद्रा समान रहे। जैसे १०) की लागत से यदि हाथ द्वारा ४० चित्र बनाये जा सक्ते हों और २० से ८० और ३० से १२० चित्र बनैं तो प्रति रुपया परता एकही रहैगा।

क्षीयमान लाभ उसे कहते हैं जिस में नियमित सीमा के उपरांत जितनाही अधिक धन किसी पदार्थ की उपज में लगाया जावै उतनाही लाभ का परता प्रति रुपया कम पड़ै। जैसे यदि किसी खेत के जोतने, खोदने, बोने, सींचने, काटने इत्यादि में २०) खर्च करने से ४०S जौ मिलते हैं अर्थात् प्रति रुपया २S जौ का परता बैठता है। इस दशामें यदि पूर्वोक्त नियमित

सीमा पहुँच गई है, फिर भी यदि उस खेत के जोतने बोने इत्यादि में २०) के स्थान में ३०) लगाकर विशेष तरद्दुद किया जाय तो (यदि अन्य उपजाऊ दशायें वैसीही रहीं) उस खेत में ६०ऽ के स्थान में कदाचित् ५०ऽ जौ हाथ लगेंगे, जिस में प्रति रुपया २ऽ के स्थान में १$\frac{2}{3}$ऽ मन का परता रह जायगा। यदि उसी खेत के तरददुद में ४०) लगा दिये जांय तो कदाचित् प्रति रुपया १ऽ ही मनका परता बैठेगा। इस से यह स्पष्ट है कि उक्त नियमित सीमा के पश्चात् अधिक व्यय करने से उपज अवश्य बढ़गई परन्तु प्रति रुपया परता कम होता चला आया।

अब देखना चाहिये कि पूर्वलिखित नियमानुसार कौन कौन व्यवसाय करने योग्य हैं और किन २ में किस २ प्रकार का लाभ पाया जाता है। यद्यपि संसार के सब व्यवसायोंकी सूची देना अथवा सब पर विचार करना बहुत कठिन है और इस छोटी सी पुस्तक में स्थानाभावसे वह बात असम्भव भी है परन्तु प्राचीन व्यवसायों पर (जिनके करने की हमको महर्षियों की आज्ञा है) और कुछ नवीन प्रचलित व्यवसायों पर (जिनको प्रायः अधिकांश मनुष्य वर्तमान समय में करते हैं) यहां विचार किया जाता है।

(व्यापार)

समस्त भूमण्डल मे जीवन के उपयोगी और आनन्ददायक पदार्थ सब देशवासियों की प्रकृति व स्वभाव के योग्य सब स्थानों पर राजा और प्रजा को आवश्यकतानुसार पहुंचाना, विद्या और गुणों के अनमोल और सर्वोपकारी पदार्थों का प्रचार करना, नाना प्रकार की नई २ बातों की और कारीगरों तथा प्रचारकों को प्रोत्सा-

हित करके देश की कलाकौशल को उन्नत करना, परिश्रम और उद्योग से आलस्य और निरुद्यमता को दूर करके स्वदेश की द्रव्योत्पादक शक्ति को बढ़ाना तथा स्वदेश को धन धान्य से पूर्ण करना व्यापार का मुख्य अभीष्ट है ।

परन्तु जब किसी कार्य के हेतु पर ध्यान न देकर मनुष्य स्वार्थ-साधन में अन्ध होजाता है तब उत्तम से उत्तम कार्य का भी परिणाम बदल जाता है । व्यापार से कुछ न कुछ रुपया पैदा करलेना हमारे देश भाइयों का अभीष्ट रहगया । परिणाम चाहे जो कुछ हो इसकी कुछ परवाह न रहगई । यह बात बिलकुल भूलगये कि शिल्प व्यापार का विशेष अंग है, इस के बिना न उचित रूप से व्यापार का अभीष्ट साधन होसकता है, न स्वदेश के वर्द्धमान उपज वाले पदार्थों की उन्नति होसकती है और न देश की कला कौशल तथा द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़ सक्ती है ।

उत्तम परता बैठने की आशा से लालचवश विचारशून्य हो कर विदेशी माल मँगाने लगे, यही नहीं किन्तु यहां तक आगे बढ़े कि नमूने भेज २ कर विदेशी कारखानों मे माल भी बनवाने लगे और विदेशी हाव भाव तथा चमक पर ऐसे मोहित हुये कि लाखों रुपया विदेश मे फंस गया, लाखों पेशगी जमा रहने लगा जिस से लाखों विदेशी कारखाने मालामाल होते जाते हैं और करोड़ों विदेशी कारीगरों का भला होता है । परन्तु स्वदेशी शिल्प चौपट होरहा है, स्वदेशी कारखाने हतोत्साह होरहे हैं, स्वदेशी कारीगर तबाह हो रहे हैं, स्वदेशी भाइयों का उद्यम उठता जाता है और अगणित देश भाई पेट भर अन्न को तरसते हैं ।

विचारशील भाइयो ! बड़े शोक का विषय है यदि आपके

व्यापार तथा रुपये से देश का कुछ भी भला न हो। बड़े लज्जा की बात है यदि आप भारत की सन्तान होकर ऐसे मुहताज होजायँ कि कपड़े के लिये लंकाशायर और मांचेस्टर के जुलाहों का मुँह ताकैं। चाकू कतरनी इत्यादि शेफील्ड के लुहारों से मांगैं। दियासेलाई के लिये क्रिश्चियना के किरानियों का भरोसा करैं। कागज, कलम, दावात, छाता, जूता, टोपी, वस्त्र, शस्त्र इत्यादि सभी आवश्यक पदार्थों के लिये जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका, इंगलैंड प्रभृति देशों के कारीगरों और सौदागरों का सहारा करैं।

भारत ऐसे देश में (जहां सब प्रकार के उपयोगी आकर तथा रुई इत्यादि आवश्यक पदार्थ उपस्थित हैं, जहां अन्य देशों की अपेक्षा मजदूरी सस्ती और ऋतुकाल सर्वदा अनुकूल है, जहां व्यापार की सुगमता के अर्थ अनेक नदियां तथा रेल, तार, इत्यादि सभी बातैं मौजूद हैं और जहां वृटिश सुराज्य मे किसी प्रकार का भय नहीं है) यदि उचित रीति से विचारपूर्वक व्यापार किया जाय तो इस से बढ़कर कोई व्यवसाय नहीं है क्योंकि सब से बढ़कर स्वतन्त्रता जो मनुष्य मात्र का गौरव है इस में पाई जाती है और इस से अपना लाभ, देश भाइयों को लाभ तथा समस्त देश को लाभ होता है।

अतः उचित है कि—

(१) प्रत्येक वस्तु के तैयार कराने का उद्योग स्वदेश ही में किया जाय—क्योंकि अपने यहां पदार्थ बनवाकर बेचने में जो वर्द्धमान लाभ होता है वह द्वितीय कारखाने से लेकर बेचने में कदापि नहीं होसक्ता है और विदेशी कारखानों मे बनवाकर बेचने से तथा

वहां से मँगाकर बेचने से स्वदेश के शिल्प को धक्का लगता है और स्वदेशी द्रव्योत्पादक शक्ति को हानि पहुँचती है।

(२) स्वदेशी कारखाने मिलों और कलों द्वारा चलाये जाने का प्रयत्न हो—क्योंकि जितना ही अधिक काम कारखानों मे मिलों और कलों द्वारा लिया जाता है उतनाही अधिक वर्द्धमान लाभ होता है। मिलों और कलों द्वारा उत्पादित जितनी वस्तुयें होती हैं जैसे--कपड़ा, कागज, पेन्सिल, दियासेलाई, खिलौने, बर्तन, शीशेआलात का काम और लोहा इत्यादि धातु की चीजैं—सब में जितनाही अधिक काम कलों और मिलों द्वारा बनता है उतनाही विशेष लाभ का परता बैठता है।

(३) प्रत्येक देशवासी किसी न किसी प्रकार से अपनी सामर्थ्यानुसार इस प्रस्ताव पर ध्यान दें--(क) जो विद्वान् तथा गुणवान् है वह यन्त्रों (कलों) के बनाने तथा चलाने की योग्यता प्राप्त करैं, विद्या और गुणों के अनमोल और सर्वोपकारी पदार्थों का प्रचार करैं और नये २ पदार्थ समयानुसार बनाने मे तत्पर हो जावैं जिनको देख २ कर विदेशियों तक का भी जी ललचावै और अन्य २ देशों से भी मांग आवै (ख) जो व्यापारी तथा सम्पन्न हैं वह स्वदेशी कारखानों में रुपया लगावैं, स्वदेशी पदार्थों का प्रचार करैं, और स्वदेशी शिल्प की रक्षा करैं (ग) और जो सामान्य पुरुष हैं उन से यदि अधिक न हो सकै तो इतना तो अवश्य दृढ़ संकल्प करलें कि कपड़े इत्यादि जो कुछ वस्त्र आभूषण पहिरैंगे अथवा जो पदार्थ बरतैंगे, स्वदेशही का बना हुआ होगा।

उपर्युक्त बातों से अपरिमित देशहित होगा, असामान्य लाभ

होगा, स्वदेशी वर्द्धमान उपजवाले पदार्थों की उन्नति होगी, स्वदेशी शिल्प की रक्षा होगी, स्वदेशी द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़ैगी, स्वदेशी धन स्वदेशही मे रहैगा, बरन विदेश से भी धन स्वदेश को आवैगा, स्वदेशी भाइयोंको आवश्यक पदार्थोंके निमित्त विदेशियोंका मुँह ताकना न पड़ैगा, स्वदेशी कारखानों में सहस्रों स्वदेश के कारीगरों और उद्यमी पुरुषों को उद्यम मिलैगा, सहस्रों निरुद्यमी भाई उद्यमी बन जावेंगे, सहस्रों नये कारीगर बन बन कर तैयार होंगे, और सहस्रों भाई जो पेट भर अन्न को तरसते हैं इन्हीं स्वदेशी कारखानों में नौकरी करके अपनी जीविका पावेंगे ।

स्मरण रहे कि व्यापार के मुख्य अंग शिल्प और वाणिज्य हैं । जिन देशों में इनका जितने उचित रूप से प्रचार है उन देश वासियों में उतनेही अधिक रूप से परस्पर सहायता, एकता, सम्पन्नता, सभ्यता, सत्यता, उदारता और स्वदेशानुराग है और वे देश उतने ही अधिक उच्च, उन्नत और सम्पन्न हैं ।

प्यारे भाइयो ! आवो सबमिलकर बन्दे मातरम् ३ अलापते हुए एकचित्त होकर फिर वह उद्योग करैं जिससे हमारा देश प्राचीन समय की भांति धनधान्यपूर्ण और कला कौशल सम्पन्न हो जावे ।

(महाजनी)

व्यापार को सुगम करना, व्यापारियों तथा उचित पुरुषों की सहायता करना, सामान्य पुरुषों का उत्साह बढ़ाना, निर्धन मनुष्यों के काम काज चलाना, रुपये को उचित प्रकार से लगाना और देश के शिल्प व व्यापार की रक्षा करना महाजनी का अभीष्ट है ।

परन्तु वर्तमान समयमें केवल ब्याज कमाना ही महाजन लोगों का अभीष्ट रह गया है। ब्याज अधिक पाने के लालच से उचित अनुचित का विचार जाता रहा। किसी ज्वांरी का दांव लगा है, रुपये का ड्योढ़ा देने को तैयार है, महाजन साहब दस्तावेज खिचवा लेने सेन चूकैंगे। किसी विषयी को रण्डी का आभूषण गढ़ाना है, कामाग्निमें अंध, हानि मीच तो कुछ सूझतीही नहीं रुपया मिलने से काम है, फिर क्या पूंछना है महाजन साहब की बन आती है। किसी रईस को फिटन लेना है अथवा कमरा सजने का सामान किसी दूकान पर पसन्द आगया है, उस समय रुपया मिलना चाहिये चाहै महाजन सारी रियासत लिखा ले। किसी भलेमानस का लड़का फैशन के नशे में चूर है पिता से अपव्यय के वास्ते पैसा नहीं मिलता, महाजन साहब दस्तावेज़ लिखाकर उसे भी रुपया देनेसे न हिचैंगे।

संक्षेप यहकि ज्वारी व्यभिचारी लम्पट लोलुप दुराचारी अपव्ययी इत्यादि अनुचित मनुष्यों को महाजन साहब से रुपया मिलता है अथवा जो मनुष्य अपना काम काज न देखता हो, जिसे अपने अपव्यय का विचार न हो, जिसे आगे पीछे का, घर बार का, लड़के बालों का, और रियासत का अंदेशा न हो। वही इन लोगों की शिकार होता है, वही इनको मन माना सूद देता है और उसी को इन से रुपया मिलता है।

परन्तु यदि किसी धनहीन को कन्या के विवाहार्थ धन की आवश्यकता हो तो रुपया देने से बगले तार्केगे। यदि किसी उत्साही पुरुष को लड़कों के पढ़ाने के निमित्त रुपये की आवश्यकता होतो गोलमाल कर जावैंगे। यदि किसी स्वदेशहितैषी को स्वदेशी कारोबार अथवा कम्पनी के लिये रुपये की आवश्यकता पड़ जाय तो सेठ

जी को सैकड़ों बहाने याद आवैंगे। सारांश यह कि किसी सत्कार्य को समझ कर कमी सूद पर रुपया न निकलेगा रुपया तभी निकलेगा जब सूद चोखा हो, चाहे उस से देश भाइयोंका भला हो, चाहे बुरा, महाजन साहब को सूद से काम रहता है।

विचारने की बात है कि यदि यह व्यवसाय पूर्व्वीय काल में इसी दशा को प्राप्त होता तो इसके करनेवालों को महाजनी का श्रेष्ट पद कदापि न दिया गया होता। और न महर्षियों ने इसे करने की वैश्यों को आज्ञा दी होती। विदित होता है कि मुसलमानों के राज्य में यह व्यवसाय अधोगति को प्राप्त हो चुका था, इसी से उन्हों ने इसे निन्दित और अकरणीय बतलाया है और यही कारण है कि वर्तमान काल में उपर्युक्त आचरण के महाजन शिष्ट पुरुषों की दृष्टि में आदरपात्र नहीं हैं। परन्तु अब यह व्यवसाय किसी विशेष जाति पर निर्भर नहीं है किन्तु रुपये पर निर्भर है। अतः उचित है कि इसके सम्बन्ध में रुपये तथा सिक्के के मुख्य हेतु पर भी विचार किया जावै।

[रुपये का हेतु]

रुपया तथा सिक्का केवल व्यापार सुगम करने के हेतु बनाया गया था नहीं तोउसके बनाने की कोई आवश्यकता न थी। देश की जितनी बहु मूल्य धातु का सिक्का बनाया जाता है वह धातु मानों व्यर्थ सी हो जाती है। क्योंकि इससे वह उनकामों के अयोग्य होजाती है जिसपर उसकी बहुमूल्यता निर्भर है। जैसे सोना इस कारण बहु मूल्य हैकि उसमें विशेष २ गुणहैं। उस के सुन्दर सुन्दर

शोभायमान आभूषण बनते हैं, उस से बनी हुई चीजों में चमक बहुत सुन्दर होतीहै, उसके पात्रोंमें रक्खा हुआ खाद्य पदार्थ बिड़ता नहीं है, उसमें बढ़ने की बड़ी शक्ति है थोड़े से सोनेसे बड़ा लम्बा तार खींच जासक्ता है। अथवा बड़ा चौंड़ा पत्र पीट सक्ते हैं, वह कई औषधों में बड़ा गुणकारी है, इत्यादि २ अनेक गुणों के कारण वह बहु मूल्य धातु का सिक्का बनाकर उसे हम वह लाभ पहुँचाने से वंचित रखते हैं-जिसके लिये वह ऐसा मूल्यवान है।

यही हाल चांदी का है उसके भी बहु मूल्य होने के अनेक कारण हैं। परन्तु जितनी चांदी के मुद्रा बनते हैं वह हमको उन लाभों को पहुँचाने से वंचित रहती है जिन के कारण उसे रजत कहाने का गौरव है।

यह हानि उठा कर भी हम को मुद्रा बनाने की आवश्यकता विशेष कर व्यापार सुगम करने के हेतु पड़ी। क्योंकि यदि मुद्रा न होते तो जब किसी को कुछ मोल लेना होता तो वह जो वस्तु उसके पास होती उसी से मोल करता, और यदि द्वितीय पुरुष को (जिस के पास प्रथम पुरुष की इच्छित वस्तु है) उस वस्तु की आवश्यकता नहीं है जिस वस्तु को देकर प्रथम मनुष्य उसे लेना चाहता है तो दोनों के सौदे में कठिनता होती इसी प्रकार यदि तीन चार मनुष्यों के मध्य सौदा होता तो और भी पेंचदरपेंच परते अतः ऐसी दशामें किसी एक ऐसे पदार्थ की आवश्यकता थी जिसके द्वारा सब का मूल्य ठहराया जासके और जिस के अदलबदल से सब पदार्थ सुगमता से मिल जाया करैं। ऐसी ही वस्तु का नाम सिक्का तथा मुद्रा है।

उससे दो बातें सिद्ध हुईं। प्रथम यह कि मुद्रा कम से कम उतनेही बनाने चाहिये जो काम चलाने के निमित्त अलम् हो सकें। क्योंकि अधिक बनाने से उस धातु का उन कामों में लगाना अवश्य ही रुक जायेगा जिन के कारण वह मूल्यवान् है। द्वितीय यह कि मुद्रा बनाने का अभिप्राय व्यापार की सुगमता तथा सहायता का है।

द्वितीय बात से यह सिद्ध होताहै कि महाजनी (जोकि विशेष कर मुद्रा ही का व्यवसाय है) सदा व्यापार और सहायता के भाव से पूर्ण रहना चाहिये इस सीमा से निकल कर अथवा इस भाव को छोड़ कर फिर वह महाजनी नहीं रह सक्ती। दुष्टजनी अथवा जो कुछ निन्दायुक्त नाम दिया जासके उचित होगा। क्योंकि उस दशामें (१) न तो रुपया अपना कर्तव्य पालन करसकेगा, (२) न धातु अपना काम दे सकेगी (३) न उचित पुरुष का काम निकलैगा और (४) न देश के व्यापार की रक्षा होगी।

अतः महाजनों को उचित हैं कि रुपया लगाते समय केवल व्याजही पर दृष्टि न रक्खें किन्तु उस के मुख्य हेतु पर अवश्य ध्यान बनाये रक्खें इस मे सन्देह नहीं कि उचित रूपसे यह व्यवसाय करनेसे अनुचित रूपकी अपेक्षा अधिक लाभ होगा। जिनको अर्थधर्मशास्त्र का कुछ भी ज्ञान है, वह भली भांति जानते हैं कि व्यापार से बढ़कर रुपया बढ़ाने की और कोई भी उचित युक्ति नहीं है अतः महाजनी के लिये अत्यावश्यक है कि किसी प्रकार प्रकट अथवा प्रच्छन्न रूप से व्यापार से सम्वन्ध बनाये रहै और रुपये को उसके मुख्य हेतु से बाहर न जानेदे।

[वैंकों से लाभ]

इंगलैण्ड में इस व्यवसाय की प्रथा अतिही सराहनीय है।

वहां गांवँ २ लोगों की बैंकें मौजूद हैं, प्रायः सभी लोग अपनी बचत का रुपया उन में जमा कर देते हैं । और कोई २ तो अपनी पूरी आय बैंक में जमा कर देता है । यदि वह कोई पदार्थ मोल लेगा तो उतने का चिक बैंक के ऊपर लिख देगा । अब जिसने यह चिक पाया है उसका भी हिसाब किसी बैंक से होगा । अतः यह चिक के दाम न वसूल करके केवल उतने मुद्रा अपने नाम जमा करा लेगा । और बेंकों में भी हिसाब जमा बाकी का कर लिया जायगा । इस प्रकार रुपयेके स्थानमें कागजी घोड़े दौड़ा करते हैं । जहां २० लाख की आवश्यकता है वहां १५ लाख में काम बनता चला जाता है यदि किसी को ।।।=) आने का सौदा लेना है तो शेष =) आना फुटकर इधर उधर उठ जायँगे परन्तु यदि चौदह आने का उसने चिक देदिया तो शेष =) आने न उसके पास बचैंगे और न अपव्यय होगा ।

इस प्रकार वहीं बैंक में मुद्रा रखने में तीन लाभ होते हैं । (१) द्रव्य का काम कागज द्वारा चला जाता है (२) फुटकर का अपव्यय नहीं होता (३) रुपये का ब्याज घर बैठे मिलता है ।

प्रत्येक बैंक के ट्रष्टी लोग इस द्रव्य को अनेकानेक उपयोगी कार्यों में लगाते हैं, कम्पनियां खुलती हैं, शिल्प वाणिज्य के कारखाने चलते हैं और अच्छे २ पुरुषों को उधार भी देते हैं जो व्यापार में प्रवीण होने पर भी द्रव्याभाव से कोई व्यापार चला नहीं सक्के ।

इस प्रकार उस देश में शिल्प और वाणिज्य की बड़ी उन्नति

होती है और रुपया के स्थान पर कागज काम चलाता है और ऐसे ऐसे बृहत्कार्य्य होते हैं जो किसी एक मनुष्य के करने के मान के नहीं। क्योंकि गावँ २ की बैंकें अपना कोष नियमित सीमा के अतिरिक्त प्रांतिक बैंकों में और प्रांतिक बैंकें लण्डन बैंक मे जमा कर देती हैं। इस प्रकार लण्डन बैंक विलायत की बैंकों की बैंकहै और विलायतवासियों का समस्त संसार में व्यापार का सम्बन्ध है। अतः सर्व स्थान में लण्डन बैंक पर चिकें स्वीकृत होती हैं।

बैंकें नोट भी वर्त्तती हैं। इस प्रवन्ध से देश को तीन बड़ेभारी लाभ होते हैं (१) कागज रुपये का झूठा रूप धारण कर काम काज चलाता है (२) स्वयं किसी अन्य देश को जाकर स्वदेश को ब्याज दिलाता है (३) देश के सोना और चांदी को व्यर्थ सिक्कों में न लगाकर उन कामों में लगाता है जिन के कारण वह मूल्यवान है।

क्याही अच्छा हो, यदि हमारे यहां भी इस प्रथा का प्रचार होजाय। गांव २ न होसकै तो पहिले जातीय बैंकें खुलैं। फिर धीरे २ नेशलन स्वयं होजायगी (१) जिसके प्रताप से हमारी द्रव्य ऐक्य रूप धारण कर बड़े २ कामों में हमारी सहायता देगी (२) हम भी विदेशियों की नाईं बड़े २ कारखाने और कम्पनियां चला सकेंगे (३) ब्याज अपनी अनुचित प्रथा को छोंड़ उचित सहायता के रूप में बदल जावैगा (४) उस कार्य में रुपया न लगेगा जिस से स्वदेश को हानि और विदेश को लाभ हो (५) देश के शिल्प वाणिज्य मे अपरिमित वृद्धि होगी।

[रुपया गाड़ने से हानि]

रुपया न लगाना अथवा गाड़रखना बड़ा ही अन्याय है, इस

से बड़ी २ हानियां रुपये के स्वमी और देश दोनों को होती हैं। जिन लोगों ने महाजनी ऐसे उत्तम व्यवसाय को निन्दित कहकर उसके सुधार का प्रयत्न नहीं किया, व्याज लेना हराम ठहरा कर लोगों के हृदय से रुपया लगाने की रुचि कम करदी। उन लोगों ने बड़ाही अनर्थ किया, वह सब से अधिक हानिके कारण और अपयश के भागी हैं। क्योंकि जब लोगों को व्याज का लालच ही न रहा, तो वृथा रुपया लगाने अथवा अन्य को देने की अपेक्षा उन्होंने अपने पास रख छोड़ना अथवा गाड़ रखना अधिक उचित समझा। परन्तु जिसे अर्थ धर्म शास्त्र का कुछ भी ज्ञान है वह भलीभांति अनुभव कर सक्ता है कि इस से--

(१) उतने रुपया अपने कर्त्तव्य पालन में असमर्थ होगये और देश को उतने नवीन रुपया बनाने की आवश्यकता उपस्थित होगई।

(२) देश की उतनी ही मूल्यवान् धातु को (जो लाभकारी कामों में लगी थी) मुद्रा का स्वरूप धारण कर अपने कर्त्तव्यपालन में असमर्थ रहना पड़ा।

(३) रुपये के स्वामी को व्याज से वंचित रहना पड़ा।

(४) असलमें भी १५) या २०) सैकड़ा का घाटा सहना पडा—क्योंकि जिस समय वह रुपया गाड़ा गया था सौ रुपये भर चांदी सौ रुपये की मिलती थी, पर अब चांदी का भाव गिरगया, यहां तक कि सौ रुपये भर चांदी का मूल्य ८०) तथा ८५) रहगया है।

(५) कभी २ द्रव्य गाड़नेवाला तथा उसके वाल बच्चे उस

द्रव्य से बिलकुल हाथ धो बैठते हैं--क्योंकि यदि पृथ्वी की चाल के कारण गड़ी हुई भारी धातु इधर उधर चल गई, जैसा कि कभी कभी सुनने में आता है तो फिर द्रव्य के स्वामी हाथ मल२ कर पछताते हैं, पता नहीं चलता और यदि स्वयं विदेश में या कहीं अकालमौत से चल बसे, तो बाल बच्चे सर पीटते रह जाते हैं। सब कमाई मिट्टी ही खा जाती है ।

अतः विचारवान पुरुषों को चाहिये कि रुपये को उचित रीति से महाजनी तथा अन्य किसी उपयोगी काम में लगावैं, द्रव्य गाड़ना स्वार्थ और देश हितैषिता दोनों के विपरीत है।

(कृषी)

यह सब से प्रधान विषय देख पड़ताहै क्योंकि भारत विशेषतः कृषि प्रधान देश है । १०० में ७५ के लगभग मनुष्यों का गुजर खेती ही पर निर्भर है । और योंतो सभी खेती से सम्बंध रखते हैं, किसानों के पुरुषार्थ, बैलों की जीवट और पृथ्वी की उर्वरा शक्ति पर जीते हैं । अतः हमको सब से अधिक इस ओर ध्यान देना आवश्यक है ।

परंतु खेद है कि हमारा ध्यान इस ओर कुछ भी नहींहै । इस विषय में हमने कुछ भी उन्नति नहीं कीहै । अबसे हजार वर्ष प्रथम जिस प्रकार खेती होती थी, उसी प्रकार आज होती है, अमेरिका आदि देशोंको देखिये कि किस वैज्ञानिक रीति से खेती होती है, कैसे कैसे कृषिसम्बन्धी यन्त्र बनाये गये हैं, क्या २ अच्छी युक्तियों से

वहांके किसान लोग खाद बनाते और अन्न पैदा करतेहैं। पर हमारे किसान लोग जानतेही नहीं कि खाद कै प्रकार की होती है, किस पौधे के लिये कौन ऋतु और कौन खाद और कैसी पृथ्वी चाहिये।

अतः परमावश्यक है कि कृषिसम्बन्धी पाठशाला नियत किये जायँ जिन में किसानों और उनकी सन्तान को कृषिसम्बंधी शिक्षा दी जाय और अन्य देशों की नाईं वैज्ञानिक रीति से यन्त्रों और कलों से यहां भी काम लिया जाय, क्योंकि इस प्रकार उचित रीति से खेती करने से अब से कई गुना पैदावार अधिक बढ़ सक्ती है।

परन्तु हमको कोरी खेतीही का अवलम्ब न होना चाहिये कुछ और भी उद्यम होना चाहिये और यही कारण है कि अन्य देश जो कृषिप्रधान भी हैं वहां अनेक मिलैं और कारखाने भी विद्यमान हैं। वहां यदि दोचार साल मेघों का अभाव हो जाय तो वह लोग भूखों नहीं मरते। परंतु हमारे यहां यदि एक फसल में पानी का अभाव हो जाय, तो अकाल का कष्ट होने लगता है। लोग भूखों मरने लगते हैं। कारण यह कि यहां जिसे देखो वही खेती करता है। अधिकांश की जीविका फसलही पर निर्भर है। ऐसा करने पर अभी क्या, आगे २ खराबियां आवेंगी। क्योंकि देश में जितनी ही अधिक जनसंख्या बढ़ती जाती है, हमको पृथ्वीसे उतनीही अधिक उपज लेनी पड़ती है। इस के अतिरिक्त हमको बहुत सा अन्न विदेशियों के लिये उत्पन्न करना पड़ता है। ऐसी दशा में भला तभी तक है जब तक उपज की नियमित सीमा तक पैदावार नहीं पहुँचती। उस के पश्चात् फिर खेती में क्षीयमान उपज का लगा लग जायगा।

कल्पना करो कि किसी खेतमें १०) रुपया लगानेसे १५८ मन

गेहूं मिलताहै अब यदि पृथ्वी की उर्वरा शक्ति इस मामलेमें अपनी नियमित सीमा को पहुँच गई है, तो फिर चाहै जैसा तरद्दुद किया जाय पैदावारका परता प्रति रुपया कमही रहेगा। चाहै १०) के स्थान में उस खेत में १५) खर्च किये जायँ परंतु अन्न कदाचित् २०ऽ से अधिक न होगा। इसी प्रकार चाहै तरद्दुद में इस बार २०) खर्च किये जावें परंतु पैदावार १५ऽ मन से कदाचित् अधिक न होगा। तात्पर्य यह कि प्रति बार पैदावार का परता प्रति रुपया कम होता जायगा।

हमारे देश में जनसंख्या बढ़ने और अन्न की मांग बढ़तीही रहने की सम्भावना है, इस कारण कभी न कभी कृषि के व्यवसाय में क्षीयमान उपज होजाने का भय है। परंतु इसके लिये अभी सैकड़ों वर्ष दरकार हैं। और वैज्ञानिक रीति से खेती का प्रबंध करने से सम्भव है कि वह भय भी न रहे। तौ भी विचारवान् पुरुषों को उचित है कि एक हाथ में कृषि हो और दूसरे हाथ में शिल्प और वाणिज्य रहै।

(पशुपालन)

संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य न होगा जो पशुओं की कमाई का यहसानमन्द न हो, अथवा जिसको पशुओं की आवश्यकता न हो। पशुओं का समस्त जीवन मनुष्यों ही के काम में जाता है। कोई इनसे भार ढुलाता है, कोई सवारी खिंचवाता है, कोई धरती जुतवाता है, और कोई इसी प्रकार अन्य काम लेता है।

गायें अमृत मय दुग्ध प्रदान करती हैं, जो मनुष्य शरीर को

माता के दुग्ध के सदृश पालन करता है और जो नाना प्रकार के रोगों का नाशक तथा बलबुद्धिवर्द्धक है ।

"पय समान तिहुँ लोक में, औषध दूजी नाहिं"

दुग्ध से दही, रबड़ी, बालाई, खोया, मक्खन, घृत, इत्यादि नाना प्रकार के पदार्थ बनते हैं जिनसे अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन तथा मिठाइयां बनाई जाती हैं । इत्यादि २ अनेक लाभ समझ कर महर्षियों ने पशुपालन भी व्यवसाय बतलाया था ।

यद्यपि पशुपालन में किसी विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं है । वह विचारे घास फूस और रूखी सूखी पत्तियों ही से अपना पेट भर लेते हैं । परन्तु खेद है कि समय ऐसा लगा है, जिसमें चारा भी मिलना कठिन है । अतः अब यह व्यवसाय प्राचीन सयय की भांति लाभदायी तथा सुभीते का नहीं रहा ।

परन्तु जहां चारा का अभाव नहीं है, जो स्थान जंगलों और नदियों के समीप हैं वहांके वासियों को यह व्यवसाय अवश्य करना चाहिये ।

खेद है कि हमारे देशवासियों का ध्यान इस ओर बहुत कम है । अधिकांश धरती खोद जोत डाली गई । जंगलों और चरागाहों के खेत हो गये । चरनेकी कौन कहै बहुत स्थानों पर गौओं के खड़े होने तक की भी जगह नहीं रही । जिससे घास का ठिकाना नहीं रहा, गौओं को कष्ट होने लगा और क्रमशः कमी होती जाती है ।

प्यारे भाइयो ! कृषी मे उन्नति करो । उसे वैज्ञानिक रीति से करना सीखो । ऊसर, बंजर, ताल, मेड़ इत्यादि खोदने से उपज न

बढ़ेगी। गौओं के चारा हरने से भला न होगा। कुछ न कुछ उनका भी हक छोड़दो।

स्मरण रहै कि यदि संसार मे दुग्ध और घृत न रहजाय, तो आप को सुख से जीवन निर्वाह करना दुस्तर होजाय, शरीर की शक्ति क्षीयमान होजाय और आंखों की रोशनी काफूर होजाय।

जिस गौ की सन्तान आपके गाड़ी, छकड़ा, रथ, बहल, सेज-गाड़ी और हल तक से कंधा न मोड़ै, जो अमृत मय दुग्ध देकर आप का पालन पोषण माता के सदृश करती हो, जिस के सब कार्य और सब पदार्थ आप के उपयोगी और लाभदायक हों, जिसका गोबर तक आपके काम का हो, जो आपकी जूतियों के लिये अपना चमड़ा भी खिंचा देने में आह न करती हो और जो केवल घास फूस ही से सन्तुष्ट हो। उस सर्वहितकारिणी माता का पालन तथा रक्षा करना आप का परम कर्तव्य और मुख्य धर्म है।

(वकालत)

जब से हमारी सरकार अँगरेज बहादुर का राज्य हुआ तब से वकालत की कुछ विशेष धूम है। जिसे देखो वही वकील बना चला आता है। धीरे २ वकीलों की संख्या इतनी बढ़ती जाती है कि मालूम नहीं यह सब मिलकर क्या करेंगे। सब बातों की हद होती है परन्तु इसकी कोई हद नहीं जैसे कानून का सागर अपार है, वैसेही उसके पैरनेवाले भी अपरिमित दिखाई दे रहे हैं और ईश्वर की दया से वैसेही घर २ लडाई झगड़ा भी तैयार हैं। धन्य है परमात्मा तू सब को किसी न किसी प्रकार से रोटी देता है। मेरी

विनय केवल इतनीही है कि वकील विद्वानों को वह सुमति दे, जिस में वकालत के अभिप्राय पर ध्यान देकर धर्माधर्म का विचार करते रहैं । इस बात को भूल न जावैं कि वकालत का मुख्य तात्पर्य न्याय (कानून) के सहारे अभियोग की सत्यता न्यायाधीश (हाकिम) को दिखाकर उचित न्याय कराने का है, यह नहीं कि परस्पर एक दूसरे से बढ़ जाने की इच्छा से अथवा लोभ के कारण से उचित अनुचित का विचार छूट जाय, और देश भाइयों के फूट को गनीमत समझकर अपनी कमाई का वसीला बनावें ।

क्याही अच्छा होता जिस प्रकार मुक़द्दमेबाजी का उद्योग होता है उसी प्रकार शांतिका उद्योग होता और वकील लोग देश भाइयों को न्याय की उत्तम २ शिक्षा देकर अदालतके खर्चसे बचा लेते जिसमें आजकल सैकड़ों घर तबाह हो रहे हैं और भारत गारतही हो रहा है । ऐसा होने पर वकालत दोषरहित होगी परन्तु तौ भी व्यापारकी नाईं प्रशंसापात्र नहीं हो सक्ती क्योंकि इस से देश की द्रव्योत्पादक शक्ति को कुछ लाभ नहीं पहुंचता है किन्तु नौकरी से बढ़कर होने मे कोई सन्देह नहीं क्योंकि इसमें एक प्रकार की स्वाधीनता है ।

(नौकरी)

चौपाई ।

करिविचार देखामनमाहीं ।
पराधीन सपनेहुसुखनाहीं ॥

यह विचारते ही मन इस ओर से भागता है और कलम रुकने लगती है। परन्तु पढ़े लिखे मनुष्यों का समुदाय इस ओर अधिक आकर्षित देखकर और विशेषतः अच्छे २ विद्वानों को भी इसमें पाकर कुछ समय के वास्ते फिर चित्त इस ओर आजाता है और विचारने लगता है कि इस व्यवसाय के आजकल इतना आदर पानेका कुछ न कुछ कारण अवश्य है।

हमारे लड़के जब स्कूल या कालेज से पढ़कर निकलते हैं और कमाने की चिन्ता उनपर सवार होती है तो बिचारे अपने को नौकरी के सिवा और कुछ कार्य्य करने के योग्य नहीं पाते क्योंकि हमारे यहां व्यापार सिखाने का कोई स्कूल नहीं, यन्त्र बनाने और गुण सिखाने का कोई "कलाभवन" नहीं, कोई लेवोरेटरी नहीं, फिर वह बिचारे करें तो क्या करें, सीखैं तो क्या सीखैं, बिचारे यदि विदेश जाकर सीखने का हौसिला करैं तो हमने कोई छात्रवृत्तियां भी तो नहीं स्थापित की हैं जिनकी सहायता से वह वहां जासकैं। परन्तु सब कठिनाइयों को भी तै करके यदि कोई लड़का विदेश को शिक्षा प्राप्त करने के अर्थ जाने का विचार करता है तब हमीलोग उलटा उसे बिरादरी से निकाल देने को धमकाते हैं। अन्यदेशों में बिरादरी के लोग उन्नति करनेको प्रोत्साहित करते हैं। परन्तु हमलोग बलात् उन्नति के बदले अवनति की ओर खींचते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अच्छे २ होनहार लड़के हतोत्साह होकर कहीं न कहीं नौकरी करलेते हैं।

दूसरा कारण आजकल अधिक नौकरी का व्यवसाय करने का यह विदित होता है कि सरकारने इस विभाग में योग्य पुरुषों के लाने

की इच्छा से अच्छे २ पद और वेतन नियत करदिये हैं जिनके लोभ से सैकड़ों ग्रेजुएट नौकरी पर मुंह के बल गिरते हैं और एक को बुलाने पर दश दौड़ते हैं। इसी कारण अब वह बात नहीं रही। धीरे २ कदर कम होती जातीहै और वेतन न्यून होतेजाते हैं। किन्तु अब यों कहना चाहिये कि पढ़े लिखों की मिट्टी खराब है।

ईश्वर को धन्यवाद है कि अब बहुत से लोगों का चित्त नौकरी से हटा है और व्यापार की ओर आकर्षित होनेलगा है।

मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि नौकरी कोई पुरुष करै ही नहीं क्योंकि ऐसा होने से संसार का काम कैसे चल सक्ता है। परंतु हां अपने वैश्य भाइयों से अवश्य प्रार्थना है कि चार रुपयेकी गुलामी करने से आठ आने का सिगरट, दियासिलाई बेंचना अथवा ख्वांचा लगाना अथवा कोई और व्यापार सामर्थ्यानुसार करना अवश्य उत्तम है। वैश्य ऐसी श्रेष्ठ जाति नौकरी में शोभा तभी पासक्ती है, जब नौकरी श्रेष्ठ पद और उत्तम वेतन की हो, ऐसीवैसी नौकरी से अपनी स्वतन्त्रता बेंचने पर लानत भेजना चाहिये और अपने समस्त देशवासियों से यह प्रार्थना है कि जैसा भेड़ियाधसान वकालत और नौकरी पर है (जिसे देखो पढ़ लिखकर यही दो पेशे करता है) वैसा अब और न करैं। क्योंकि आवश्यकतासे अधिक मनुष्य इनदोनों में इस समय मौजूद हैं, इस से अधिक की गुंजायश नहीं है इनमें यह शक्ति नहीं है कि चाहै जितने मनुष्य आवैं सबको उचित स्थान व आदर दें। यह शक्ति केवल व्यापारही में है कि चाहै जितने मनुष्य आवैं सब को स्वागत देकर अपने नाना प्रकार के रूप धारण कर सबका पालन पोषण करै और देश की राजश्री को बढ़ावै।

व्ययविधान।

व्यवसाय चाहै जैसा उत्तम और लाभदायक हो जब तक उसी के साथ व्यय का उचित प्रबन्ध नहीं होता है तब तक किसी प्रकार सफलता नहीं हो सक्ती। आय, और व्यय में ऐसा घनिष्ट सम्बन्धहै जैसा कार्य और कारणमें पाया जाताहै। हम लोग समझते हैं कि द्रव्य का प्राप्त करना मात्र दुस्तर है परंतु उसका व्यय अत्यन्त सरल विषय है। प्रत्येक मनुष्य अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्रता से व्यय कर सक्ता है। यह हमारी बड़ी भूल है। सुव्ययका विषय यदि उपार्जन से बढ़कर नहीं तो उस से कम कठिन भी नहींहै। एक बड़े विद्वान् का बचन है कि " रुपया बड़ी आमदनी से नहीं जुड़ता है, किन्तु कम खर्चसे" वास्तव में सफलता केवल सुव्ययपरही निर्भर है। यदि किसी मनुष्य की आय प्रतिदिन हजार रुपया हो और व्यय में केवल)॥ के चने पड़ते हों इसी से वह अपना कालक्षेप करता हो तो परिणाम यह होगा कि उस का शरीर निर्बल हो जायगा वह क्षीणायु होकर शीघ्र काल का कौर बनैगा और उस की समस्त उपार्जक शक्ति मिट्टी में मिल जायगी। यदि वही पुरुष अपनी सब द्रव्य व्यर्थ नष्ट करदे, तो काम पड़ने पर वह दूसरे का सदा मुहताज रहैगा। और देश की उपजाऊ शक्ति को भी उस धन से किसी प्रकार से लाभ न होगा।

स्मरण रहै कि धन को उचित रूप से व्यय न करने से केवल उस के मालिकही की हानि नहीं होती किन्तु देश की विशेष हानि होती है। क्या कारण है कि अकेला इंगलैण्ड जो वर्गफल में हमारे भारत का चतुर्थांश होगा समस्त एशिया से पँचगुनी द्रव्योत्पादक

शक्ति रखता है। यही जापान जो ५० वर्ष प्रथम असभ्य गिना जाता था केवल इतनेही दिन में अपने आय और व्यय का पूरा प्रबंध करने से ऐसा शक्तिमान होगया कि रूस ऐसे उद्दण्ड महाराज का जिस को भूमण्डल की सभी शक्तियां कुछ न कुछ दबती थीं, जल और थल सब जगह गर्व गिरा दिया। पोर्टआर्थर ऐसे अभेद्यदुर्ग को तोड़कर ऐसी विजय प्राप्त की कि समस्त भूमण्डल में वीरशिरोमणि जापान की सभी लोग सहस्र मुख से प्रशंसा कर रहे हैं।

देवब्रत भीष्म ने मरते समय महाराज युधिष्ठिर को यह उपदेश दियाथा कि पुत्र! अपनी आय व्यय का पूरा प्रबंध रखना। और उसे नित जांचते रहना। अतः हमको उचित है कि बुड्ढे भीष्मपितामह की अंतिम बाणी को अपने २ हृदय में स्वागत दें और दत्तचित्त से उस उपदेश का अनुकरण करैं।

परन्तु जब हम अर्थशास्त्र के सिद्धांतानुसार विचार करते हैं तो हम में प्रति सैकड़ा ९९ मनुष्यों पर अपव्ययी होने का अभियोग लगाया जा सक्ता है। हमको इस बात का ध्यानही नहीं है कि द्रव्य किसीप्रकार * श्रुतायुधवाली गदा से कम नहीं है। जो युद्धकर्त्ता पर प्रक्षेपित करने अर्थात् व्यय में लगानेसे शत्रु संहार करती, अर्थात् देश के दुख दरिद्र को मार गिराती है परंतु अयुद्धकर्त्ता पर

*** वरुणजी ने श्रुतायुध को एक ऐसी गदा दी थी जो युद्धकर्ता पर चलाने से उसका अवश्य नाश करदे पर अयुद्धकर्त्ता पर चलाने से वह गदा लौट कर चलानेवालेही का प्राण लेलेती थी, यह कथा महाभारत द्रोणपर्व की है।**

छूटने अर्थात् अपव्यय में उठने से केवल यही नहीं कि शत्रुसंहार न करे बरन् लौट कर प्रक्षेपक अर्थात् देशकाही बिनाश करदेती है ।

अतः व्यय का उचित विचार परमावश्यक है । व्यय दो प्रकार का होता है एक वह जिस से देश की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है और दूसरा वह कि जिस से देश की उपजाऊ शक्ति को हानि पहुँचती है । प्रथम को सुव्यय और दूसरे को अपव्यय कहते हैं।

सुव्यय विचार ।

(स्वदेशीपदार्थ)

जब हम स्वदेश के बने हुए पदार्थ मोल लेते हैं तो हमारा व्यय अवश्य होता है परन्तु उस से हमारे ही देश के कारीगरों को लाभ होता है । देश का रुपया देशही में रहता है सात समुद्र पार नहीं जाता और उस से ऐसे मनुष्यों का लाभ होता है जो अपनी जीविका देश व्यापार की उन्नति करके उपलब्ध करते हैं । अतः जितने अधिक स्वदेशी पदार्थ हम बर्त्तते हैं उतनाही अधिक देश के कारीगरों का उत्साह बढ़ता है, और जितनाही उनका उत्साह बढ़ता है उतनाही हमारे देशका शिल्प और व्यापार बढ़ता है, और जितनाही हमारे देशका शिल्प और व्यापार बढ़ता है, उतनाही उसकी उपजाऊ शक्ति में वृद्धि होती है ।

स्वदेशी पदार्थ वर्त्तने में सम्भव है कि अभी कुछ दिन हमारा व्यय विदेशी पदार्थों की अपेक्षा अधिक हो । क्योंकि हमारे यहां अभी सब काम कलों के द्वारा नहीं होता है । हाथ से वही काम करने से कारीगरों का परता कलों की अपेक्षा महँगा पड़ताहै परन्तु स्मरण

रहै कि यदि हमने अपने कारीगरों के उत्साह को बढ़ाया और अपने स्वदेशी माल को अपनाया तो एक दिन वह आवैगा कि इस देश की बराबरी अन्य कोई देश न कर सकैगा क्योंकि—

१ अन्य देशों की अपेक्षा हमारे यहां मज़दूरी सस्ती है । बिलायत में जितने दामों में एक मनुष्य कठिनता से मिलैगा, हमारे यहां उतने दामों से दश मनुष्य खुशी से काम करैंगे ।

२ अन्य देशों की अपेक्षा हमारे यहां सब प्रकार की उपयोगी आकर (खानैं) हैं और रुई इत्यादि अनेक पदार्थ बहुतायत से पैदा होते हैं जिन को विदेशी लोग हमारे यहां से मंगाकर अपने यहां बनाते हैं और फिर यहीं को भेजते हैं इस प्रकार उनको दोहरा खर्चा बैठताहै हमको घर बैठे सब पदार्थ हमारा देश दे रहाहै केवल उन से काम लेना और उद्योग करना हमारा काम है ।

३ हमारे देश में कोई भी ऋतु ऐसी नहीं जिस में काम काज न हो सकै जैसी कि अन्य देशों की दशाहै, जिन में जिस दिन आकाश निर्मल होता है उसको परम भाग्य समझते हैं, जिन में हफ्तों घर के बाहर काम काज नहीं कर सक्ते और जिन में प्रायः ६ या ८ घंटे ही काम कर सक्ते हैं । हमारे यहां क्या पूछनाहै चाहै १२ घंटा काम करै चाहै चौबीसौ घंटा, सामर्थ्य होनी चाहिये कोई ऋतु हमारी बाधक नहीं है ।

इन सब सुभीतों से भली भांति स्पष्ट है कि हमारा परता बहुत सस्ता पड़ैगा और हमारे मुकाबिले में औरों का परता न लगैगा यदि हम वैज्ञानिक रीति से कलों के द्वारा काम करना सीखलें ।

(परोपकार)

यदि हम अपना द्रव्य परोपकार में व्यय करैं कोई विद्यालय अथवा कोई कलाभवन स्थापित करैं तो यह व्यय ऐसा है कि एक पैसा खर्च करने से दश पैसे का लाभ देश को पहुँचता है। सैकड़ों विद्यार्थी पढ़कर तैयार होंगे जिनसे देशोन्नति की सब प्रकार संभावना है ।

(विद्यार्थियों को सहायता)

इसी प्रकार छात्र वृत्तियां (वज़ीफ़े) स्थापित कर छात्रों को विद्योपार्जन में सहायतां देना, अन्य २ देशों को अनेकानेक गुण सीखने भेजना अतिही उचित सुव्यय है ।

(सत्पात्रों को दान)

ऐसे पुरुषों को दान देना अथवा सहायता करना जिनके सर्व कार्य परोपकार और देशहितैषिता के हैं जैसे प्राचीन काल में ब्राह्मणोंके थे ।

(उपयोगीविषय)

किसी उपयोगी पुस्तक की रचना करना तथा कराना अथवा उत्तम विचारों को अन्य भाषासे निज भाषामें अनुवाद करके अपनी मातृभाषा के भण्डार को बढ़ाना । अथवा अपने यहां के सद्ग्रन्थों का सर्व साधारण के समझने के लिये टीका करना तथा कराना अथवा उत्तम २ ग्रन्थ जो छिपे पड़े हैं उनको खोज कर छपवाना इत्यादि २.........

ऐसे कामों में पैसा खर्चने से देश की शक्ति बढ़ती है और ऐसे ही व्यय को सुव्यय कहते हैं ।

किन २ कामों में द्रव्य व्यय करना चाहिये—उन सबकी सूची देना अत्यन्त कठिन है इस छोटीसी पुस्तक में ऐसे बृहत्कार्य का अनुष्ठान करनाभी उचित नहीं है । जो मनुष्य जिस विषय का ज्ञाता है वह भलीभांति कहसक्ता है कि उस विषय में द्रव्य किस रूप से लगाया जावै । सब का मूलसूत्र यह है कि जिन कार्यों से देश की द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़ै वही उत्तम हैं, उन्हीं में व्यय करना चाहिये और वही व्यय सुव्यय कहा जासक्ता है । और उसी से सफलता प्राप्त होसक्ती है ।

अपव्ययविचार ।

(विदेशीपदार्थ)

हमारा सब से बड़ा अपव्यय विदेशी पदार्थों का बर्त्तना तथा खरीदना है । प्रति वर्ष हमारे देशके करोड़ों रुपये विदेशियों की भेंट होते हैं । जिस के कारण वह लोग मालामाल हो रहे हैं । और हमारा देश नित्यप्रति धनहीन होता जाता है । कदाचित् समस्त महिमण्डल में अब हम से धनहीन कोई नहीं है । आय के लेखे में हमारे यहां प्रत्येक मनुष्य की वार्षिक आमदनी अधिक से अधिक तीस रुपया साल की है परन्तु इंगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, यूनाइटेड् स्टेट्स, हालैंड और बेलजियम इत्यादि में प्रति मनुष्य की आय का औसत चारसौ पंचान्नबे रुपया साल का है ।

संसार का नियम है कि धनवान् मनुष्य धनहीन लोगों से काम लेते हैं परन्तु हम लोग दरिद्र होकर भी धनसम्पन्न जातियों से

काम लेकर उन्हें द्रव्य देते हैं । हम कपड़े तभी पहिनैं चिराग तभी जलावैं जब पांचसौ रुपयेकी आयवाला नौकर पिन्हादे और लैम्प तेल बत्ती तक हमारे लिये भेजदे । हमारी इस मूर्खताही का यह फल है कि सैकड़ों दीन भाई पेट भर भोजन को तरसते हैं । सर हेनरी काटन ने हिसाब लगा कर अपने एक लेक्चर में कहा था कि भारत वर्ष में २० साल के बीच दो करोड़ मनुष्य भूखसे मरगये । सच है जो मनुष्य डेढ़ या दो रुपया मासिक आय होने पर चालीस रुपया मासिक आय वाला नौकर रक्खै उसकी यही दशा होगी, पर ऐसी दशा में भी तो हम नहीं सोचते । सत्य है—

जेहि विधना दारुण दुख देई ।
तेहिकी मति पहिले हरिलेई ॥

हाय ! हमारे देश वासियों को क्या होगया है यह केवल अपना धन ही बाहर नहीं फेंकते किन्तु इस कार्य से स्वदेश के शिल्प और वाणिज्य की भी अवनति किये डालते हैं ।

अभी तक तो लोगोंका यह बहानाथा कि देशी पदार्थ तो तब बरतैं जब कहीं स्वदेश में बनते भी हों । परन्तु अब यह कहनाभी नहीं चल सक्ता । नेशनल कांग्रेस ने अपनी प्रदर्शनी द्वारा भलीभांति दर्शा दिया कि प्रायः सभी आवश्यक पदार्थ देश में तैय्यार हो रहे हैं । आशा है कि थोड़ेही काल में उसकी सूचीभी तैयार हो जावैगी जिस से प्रत्येक पदार्थ का पूर्ण पता सुगमता से चल जायगा । फिर जिस समय हम सब को उनकी चाह होगी सैकड़ों स्वदेशी दूकानैं जगह २ खुल जांयगी और घर बैठे सब स्वदेशी वस्तुयें मिला करैंगी ।

थोड़ेही समय से कुछ हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ

है जिसका परिणाम यह हुआ कि सभी बड़े २ शहरों में स्वदेशी दूकानें खुल गईं, इस के साथही स्वदेशी कारखाने भी अनेक खुल गये । और बहुतों का प्रवन्ध हो रहा है ।

हम को चाहिये कि अब विदेशी पदार्थों में धन न लुटावैं, एक बार फिर स्वदेशानुराग की धूम मचा दें, स्वदेशाभिमान से गद्गद हो जावें और अपने अपव्ययों को बन्द करके भारतके सच्चे सपूत बनें ।

(अविचारितदान)

हमारे धन का एक विशेष भाग दानके नाम से अपव्यय होता है । इस में शंका नहीं कि दान देने से बढ़कर कोई पुण्य नहीं, दान सर्व पाप नष्ट करता है, कीर्ति और यश की उन्नति करता है और देशोन्नतिका कारण होता है, इसी कारण महर्षियों ने हमारे कृत्य में वह नियम नियत किये हैं जिससे पैदा होने से लेकर मरण पर्य्यन्त और पश्चात् भी धर्म के बन्धन से कुछ न कुछ दान अवश्य हुआ करता है ।

वास्तव में यह प्रथा अतिसराहनीय है परन्तु आंखें मूंद कर किसी उत्तम से उत्तम रीति पर भी चलने से कार्य बिगड़ने की कौन कहे समस्त संसार के बिगड़ जाने की सम्भावना होती है * हम आंख मूंद कर दान करते हैं यह भी नहीं विचारते सुपात्र है या कुपात्र । यद्यपि धर्मशास्त्र की आज्ञा कुपात्र को दान देने की कदापि नहीं है ।

---

* यथा कविवर ट्यनिसन ने कहा है--

" Lest one good custom should corrupt the world."

ऐसा न हो कि एक उत्तम रीति संसार को बिगाड़ दे

गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम् ।
नापात्रे विदुषा किंचिदात्मनःश्रेयइच्छता ॥

याज्ञ० स्मृ० अ० १ श्लो० २०१

"गौ, पृथ्वी, तिल, सुवर्णादि जो कुछ दान करना हो विधिपूर्वक सुपात्र को देवै, अपना भला चाहै तो कुपात्र को कदापि न देवै"

संकल्पका भी नियमहै कि दानपात्रका नाम गोत्र कुल इत्यादि जानकर पात्र कुपात्र का विचार करके उत्तम कालमें दान दिया जाय, इस के अतिरिक्त दान लेने का अधिकार केवल ब्राह्मणमात्र को दिया है * सब जातों के लिये भीख का द्वार नहीं खोल दिया है कि जिस का जी चाहै भीख का पेशा करके निरुद्यमता से विचरा करै ।

अब विचार करना चाहिये कि प्राचीन कालके ब्राह्मणोंको क्यों दानपात्र कहा है ? कोई २ कहते हैं कि महर्षि लोग अत्यन्त दूर-दर्शक थे, वह जानते थे कि आगे हमारे लड़के नालायक होंगे । अतः ऐसे ऐसे नियम रचगये कि जिससे उनकी आगामी सन्तानको किसी प्रकार अपने भरणपोषणमें कठिनता न पड़ै । न कुछ करसकैंगे तो दान इतना मिलैगा जो भोजन के लिये काफी होगा ।

ऐसा कलंक उन महर्षियों को लगाना (जिनके सर्व कार्य स्वार्थ से परे और देशहितैषिता से पूर्ण थे, जिनका समस्त जीवन, जप तप संयम और सर्ववर्णों की रक्षाही में व्यतीत होता था जो सदा देश और धर्म के रक्षक थे) सर्वथा अनुचित है ।

***मनु० अ० १ श्लोक ८८, ८९, ९०, में जहां सब वर्णों का कर्म निरूपण कियाहै वहां ब्राह्मण मात्रको दान लेनेका अधिकार दियाहै।**

सदा विद्याध्ययन करना और कराना, उत्तमोत्तम विद्याओं का प्रचार करना, सर्व विषय के उत्तमोत्तम ग्रन्थों की रचना करना, राजाओं को सुमार्ग पर चलाना, न्याय का प्रचार करना, सब प्रकार से देशोपकार करना, जिन ब्राह्मणों का धर्म था वह दानपात्र ठहराये गये थे। अतः प्रकट में तो वह दान लेतेथे परन्तु वास्तव में संसार से खाने मात्र को लेकर त्यागके वह निःसन्देह उदाहरण होते थे और शेष तीन वर्णही उनके ऋणी रहते थे।

सेन्ट्रल हिन्दू कालेज बनारस, श्रीदयानन्द कालेज लाहौर, फर्गुसन कालेज पूना इत्यादि के वे अध्यापक जो सैकड़ों हजारों रुपया मासिक की योग्यता रखने पर भी पचास २ अथवा साठ २ रुपये मासिक लेकर काम करते हैं। क्या कोई मनुष्य कह सक्ता है कि वे दान लेते हैं। पर देखने में यह कालिजें अवश्य इनको दान देती हैं क्योंकि दान का अर्थ देना है परन्तु विचारना चाहिये कि वास्तवमें दानी और स्वार्थत्यागी कौन है। यह अध्यापक लोग अथवा वह कालेज।

ऐसाही दान उस समय के ब्राह्मण लेते थे। इसी दान से अपरिमित देशहित होता था और ऐसेही दान की प्रशंसा की गई है परन्तु अपनी विवेकभ्रष्टता से मनुष्य ऋषिप्रणीत मर्मको न समझ कर अंध परम्परा के अनुयायी होते हैं और उत्तम से उत्तम प्रथा को मिट्टी में मिला देते हैं।

वर्त्तमान समय में प्रायः दानी लोग यही नहीं जानते कि दान दिया किस को जायगा। पात्र कुपात्र का विचार करना अथवा यह विचार करना कि इस दान का परिणाम क्या होगा तो बड़ी दूर है

संकल्प में अमुक महाशय अथवा नानानामगोत्र पढ़ दिये जाते हैं। इस से अधिकतर दान कुपात्रों ही को मिलता है जिस से दाता पुण्य के बदले पाप का भागी होता है और देश को लाभ के बदले हानि होती है। क्योंकि इस प्रकार के दान अनेकानेक दूषितरूप धारण करके देश का विनाश कर रहे हैं। यद्यपि इन का विस्तार पूर्वक वर्णन इस पुस्तक में स्थानाभाव से नहीं हो सक्ता तथापि मुख्य २ बातें छोड़ते भी नहीं बनतीं अतः संक्षेपतः उनका कुछ वर्णन किया जाता है।

प्रिय पाठक! सब से प्रथम मैं यह बात दिखलाता हूं कि किस प्रकार उत्तमोत्तम रीति भी आंखें मूंद कर करने से अनुत्तम हो जाती है। एवं किस प्रकार दान से भी अधर्म और देशकी हानि होतीहै।

प्राचीन समय में जब वाणप्रस्थ और सन्यासाश्रम का विधिवत् पालन होता था, जिस में मनुष्य परमात्मा का ध्यान और देशोपकार के अतिरिक्त और सब धंधे त्याग देता था। उस समय ऐसे महा पुरुषों को (जिनको स्वार्थसाधन का कुछ विचारही न था, जो कुछ हो परमार्थ हो, यही जिनकी बानि थी, जिन का जितना ही समय क्षुद्र जीविका के अर्थ व्यतीत होता उतनीही देशकी हानि थी) भोजन का प्रबन्ध प्रति स्थान पर कर देने की इच्छा से धर्म ग्रन्थों ने हमारे नित्य कर्म पञ्चमहायज्ञादि में अतिथिपूजा रख दी है और अभ्यागत का यथासाध्य सत्कार करना गृहस्थ का मुख्य धर्म बतलाया है। ऐसा होने से उपर्युक्त महानुभावों को सुभीता होने के अतिरिक्त देशके अंगहीन और असमर्थ मनुष्योंका भी पालन पोषण होनेमें सुगमता थी और यदि दैवयोगसे कोई मनुष्य

ऐसी दुर्घटना में पड़ जाय कि उसे भोजन तक का भी डौल न लगै तो वह भी अतिथि नाम से स्वागत पाता था ।

परन्तु इस अतिथि शब्द ने और हमारी उदारता ने ऐसा चौका लगाया कि जिसे देखो वही अतिथि हो गया । जागा, नागा, भाट, भिच्छुक, साईं, गोसाईं, जोगी, जोसी, मीर, फ़क़ीर, डफाली, मुजावर, गद्दीवाले, पुरबियासाधू, कनफटे, मँगते, इत्यादि अनेक जातियां बन गईं । जिनका अतिथि बनने के अतिरिक्त दूसरा काम ही नहीं । कहां तक कहैं बहुत ऐसे मनुष्य हैं जो अपनी जाति अतीत (अतिथि) बतलाते हैं ।

गत जनसंख्या से मालूम हुआ कि भारत में ५२ लाख मनुष्य ऐसे हैं जिनकी शारीरिक दशा दुरुस्त है, जो अच्छे हट्टे कट्टे सण्डे मुसण्डे हैं, परन्तु उनका पेशाही भीख मांगने का है । अब विचार करना चाहिये कि केवल योग्य अयोग्य अतिथि विचारने मात्र के आलस्य से देश की ऐसी बड़ी हानि हो गई है कि इतने निरुद्यमी मनुष्य उद्यमी मनुष्यों का धन खाजाते हैं । यदि प्रति मनुष्यके भोजन का व्यय दो आना मात्र रक्खा जाय (यद्यपि ऐसे सण्डों के खाने में इस से अधिक होगा) तो ५२ लाख मनुष्यों का माहवारी खर्चा १ करोड़ ५६लाख तथा २३ करोड़ ४० लाख रुपया सालाना हुआ । यदि उनके कपड़ेलत्ते, गांजा, भांग, तमाकू, चरस चण्डू अफीम इत्यादि का खर्चा जोड़ाजाय तो ४० करोड़ से कम न होगा । यदि यही मनुष्य कुछ उद्यम करने लगजाते तो गृहस्थों का इतना रुपया यह बचता और इतनाही वह स्वयं पैदा करते । अतः इससे प्रकट है कि इन भिक्षुकों के कारण ८० करोड़ रुपया सालाना देश की हानि होती है ।

विचारशील सज्जनो ! जिस दान से देश की वार्षिक आय में ऐसी बड़ी हानि हो, जिस दानसे देश के ५२ लाख मनुष्य निरुद्यमी बनजायं, वह दान अपव्यय नहीं, अकर्त्तव्य नहीं, निन्द्य नहीं, अधर्म नहीं तो और क्या है।

(जागीरदारसाधु)

हमारे बहुत से उदार भाइयोंने इलाके के इलाके धर्मकार्य्य में लगादिये हैं। बहुतेरोंने धर्म के नाम से सामर्थ्यानुसार जागीरें दी हैं, माफियां दीहैं, और बहुतों को यहांतक जोश होता है कि किसी तीर्थ पर जाकर पण्डे को बुलाकर, या किसी और मनुष्य को सर्वस्व दान ददेते हैं, और समझते हैं कि ऐसा करने से वह दुर्लभपुण्य के भागी होंगे।

यद्यपि उपर्युक्त कार्य्य सभी सराहनीय हैं वह पुरुष धन्य हैं जो ऐसे कार्य्य करते हैं। परन्तु बिचार शून्यता के कारण वर्त्तमान दशा उनकी भी शोचनीय है क्योंकि इन माफियों और जागीरों से साधु लोग बड़े २ ताल्लुकेदार और ज़मींदार होगयेहैं जो साधु की साधुता के प्रतिकूल है। साधुओं को विभव चाहिये ही नहीं।

जो साधु विभवसम्पन्न हैं उनको चाहिये कि अपनी आय का अधिकांश देशोपकारी कार्य्य और सुव्ययों में लगाया करैं। भण्डारा देने हिजड़े नचाने और सण्डों को छकाने से झूंठा नाम होने के सिवा कुछ लाभ नहीं है। इन भण्डारों में मालपुआ और हलुआ छकने के लोभ से ऐसे २ लोग शिर मुंड़ाकर वैरागी होजाते हैं जिन्हे विरक्तता तो दूर रही जिह्वालोलुपता तक को वश करने की सामर्थ्य नहीं है। फिर क्या प्रयोजन है कि व्यर्थ धन नष्ट करके देश में और भी नि-

रुद्यमी पुरुषों को बनाने का उद्योग कियाजाय । मेरी समझ में बिचारा भारत तो इन ५२ लाखही के बोझ से कुचल रहा है परन्तु जो साधुलोग अज्ञानता को प्राप्त होकर शिक्षा ग्रहण करने के असमर्थ हैं जो हठधर्मी करके धर्म तथा देशका सत्यानाश करने से नहीं चूकतेहैं, उनको सुधारने का प्रबन्ध हमारे स्वदेशभक्त महाराज सयाजीराव गायकवार तथा महाराज मैसूर की भांति करना चाहिये । जिन्हों ने वाहियात माफियों को ज़प्त करके उस आय को लाभदायक विषयोंपर व्यय करने का प्रबन्ध किया है। परन्तु यदि इतना न होसके तो यह तो अवश्य होना चाहिये कि आगामी दान का उचित प्रबन्ध कियाजाय अथवा उसके प्रबन्ध का अधिकार किसी योग्य पुरुष तथा किसी सच्चे देशहितैषी को दियाजाय जो उस द्रव्य को सुव्यय में लगाया करै ।

यदि मुन्शी कालीप्रसादने अपना सर्वस्व किसी पुरुष को दान करदिया होता तो आज कायस्थपाठशाला प्रयाग कहां से आता । यदि सरसैयद अहमदने वैसाही दान किया होता तो अलीगढ़कालेज कहां से खुलता । यदि मिस्टरताताने दान में उचित विचार न किया होता तो रिसर्चवैज्ञानिक कालेज की नीव कहां से पड़ती । इसी प्रकार बनारस हिन्दू कालेज के निमित्त श्रीमती एनीवेसन्ट की करणी सराहनीय है ।

किसी एक पुरुष को दान करने से केवल यह होता है कि दान करनेवाला धनहीन और लेनेवाला धनवान होजाता है । परन्तु बिना हाथ की कमाई का पैसा रुकतातोहैही नहीं थोड़ेही दिनों में वह द्रव्य नाना प्रकार के अपव्ययों में नष्ट होजाता है । और उससे लाभ के स्थान में हानि होती है ।

(घटवारिये, पंडे तथा गयावाल)

इसी दान से मिलता हुआ घटवारियों, पण्डों और गयावालों को देना है क्योंकि–

नवार्य्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे ।
न वकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् ॥
मनु० अ० ४ श्लो० १९२

" बिलाववृत्तिवाले ब्राह्मण को, वकवृत्तिवाले ब्राह्मण को, वेद न जाननेवाले ब्राह्मण को धर्मवान् पुरुष जल का भी दान न देवै "

यथेरणे वीजमुप्त्वा नवप्ता लभतेफलम् ।
तथाऽनृचेहविर्दत्वा नदाता लभतेफलम् ॥
मनु० अ० ३ श्लो० १४२

" जैसे ऊषर में बीज बोकर किसान को फल नहीं प्राप्त होता वैसे बिनापढ़े ब्राह्मण का दान देने से दानी को कुछ फल नहीं मिलता"

यदि केवल यही हानि होती कि दानका फल न होगा (क्योंकि यह लोग प्रायः मूर्खही होते हैं शुद्धसंकल्पमात्र का भी ज्ञान नहीं होता) तो हम इस प्रकार निषेध न करते । परन्तु शोक से कहना पड़ता है कि यह लोग मूर्खता और विचारशून्यतावश हमारे धन से सभी प्रकार का अनर्थ करते हैं । भांग, गांजा, अफीम, चर्स इत्यादि पीपीकर लाठियां चलाते हैं, फौजदारियां करते हैं, हजारों रुपया अदालत में फूंकते और वकील वैरिष्टरों को देते हैं ।

कभी पुरोहित जी यजमान को गिरवीं रखते हैं । कभी पण्डा जी देवमन्दिर की आय रेहन करते हैं । बड़े आश्चर्य्य की बात है ! कि उधार लें पण्डा जी और कर्जा पाटैं हम लोगों के पूज्य देवता । इन लोगों की अन्य घृणित लीलाओं की बात अब और कहना उचित न समझकर केवल इतनाही कहताहूं कि हम लोगों को उचित है कि जहांतक होसके पढ़े और सदाचारी पंडोंही को दानदें । जिसमें मूर्ख और दुराचारी अपनी जीविका में बाधा पड़ते देख विद्या और सद्गुणों की ओर ध्यान दें और उचित रीति पर कार्य्य किया करैं ।

विचारभ्रष्टता वश जितने भिक्षुक और पंडा लोग हम पालते हैं उतनाही देश का धन नष्ट होजाता है और साथही इसके उतने मनुष्य आलसी और निरुद्यमी होजाते हैं और देश की द्रव्योत्पादक शक्ति उतनीही घटजाती है ।

बड़े शोक की बात है कि हमारी उदारता भी स्वदेश को लाभ पहुंचाने के स्थान पर उसका मूलोच्छेदन करै ।

(पैतृकस्नेह)

अब हम अपने उन अपव्ययों पर विचार करते हैं जो पैतृक स्नेहवश हम लोग किया करते हैं । प्रायः देखाजाता है जो जितना ही अधिक धन महाब्राह्मणों को देता है लोग उसका उतना अधिक स्नेह मृतपुरुष पर समझते हैं । जो जितनेही अधिक ब्राह्मण अपने पिता के श्राद्ध अथवा ब्रह्मभोज में खिलावै, मनुष्य उसे उतनाही अधिक पितृभक्त समझते हैं । यह सर्वथा उनकी भूल है ।

देखिये इस विषय में धर्मशास्त्र की क्या आज्ञा है--

श्रोत्रियायैवदेयानि हव्यकव्यानिदातृभिः ।
अर्हत्तमाय विप्राय तस्मैदत्तंमहाफलम् ॥
मनु० अ० ३ श्लो० १२८

" देवता और पितरोंके निमित्त जो कुछ दिया जावै वेदपाठी ब्राह्मण को देना योग्य है । जो कुछ ऐसे उत्तम ब्राह्मण को दिया जाता है उसका फल विशेष होता है "

द्वौदैवे पितृकार्य्ये त्रीनेकैकमुभयत्रवा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपिनप्रसज्जेत विस्तरे ॥
मनु० अ० ३ श्लो० १२५

" श्राद्ध में देवताओं के निमित्त दो और पितरोंके निमित्त तीन अथवा दोनोंके निमित्त एक २ ब्राह्मण जिमावे, बहुत धनवान पुरुष को भी अधिक ब्राह्मणों का जिमाना उचित नहीं "

अधिक ब्राह्मणों के जिमाने से पांच हानियां हैं । प्रथम सत्कार भली भांति नहीं हो सक्ता, दूसरे यथायोग्य स्थान नहीं मिलता, तीसरे यथायोग्य काल नहीं मिलता, चौथे शुद्धता नहीं होती और पांचवें श्रेष्ठ ब्राह्मण नहीं मिलते, इसलिये बहुत ब्राह्मणोंको न जिमावे । यह मनु० अ० ३ श्लोक २६ का वचन है ।

श्राद्धमें जो फल दश लाख ब्राह्मण वेद न जाननेवालोंको जिमाने से होता है वही फल विधिपूर्वक एक वेद जाननेवाले ब्राह्मण को जिमानेसे होता है । यह मनु० अ० ३ श्लोक १३१ का वचन है ।

इत्यादि २ धर्मशास्त्र के प्रमाणों से भली भांति स्पष्ट है कि पैतृककर्मों में जनसंख्या बढ़ानेसे कुछ लाभ नहीं होता ।

विचारना चाहिये कि जहां पर यह अभीष्ट है कि मृत प्राणीके निमित्त कुछ द्रव्य पुण्य कार्य में लगे वहां ऐसा तो न हो कि वह सब निष्फल हो जाय और पुण्य के बदले पाप के भागी हों ।

केवल वही द्रव्य पुण्य कार्य में लगा हुआ कहा जासक्ता है (१) जिससे वास्तव में किसी दीन दुखिया का पेट भरे (२) जिस से देश के परिश्रमी लोगों को लाभ पहुंचै (३) जिससे स्वदेशकी द्रव्योत्पादक शक्ति बढ़ै ।

परन्तु कट्टहों को दान देने से इन तीन बातों में से एकका भी साधन नहीं होता । बरन् आलसी और निरुद्यमी पुरुषों की सहायता होती है । अतः यदि थोड़ासा धन अपनी २ कुलप्रथा के अनुसार महा ब्राह्मणों को देकर अधिक भाग किसी देशोपकारी काममें मृत पुरुष के नाम लगा दिया जावे तो अति उत्तम होगा ।

(मादकपदार्थ)

मादक पदार्थ जैसे गांजा, भांग, चर्स, अफीम, चण्डू, मद्यादि खाने पीनेसे भी देशकी बड़ी हानि होती है । इन के सेवन से (१) मनुष्योंकी कार्य दक्षताको बड़ा धक्का पहुँचताहै, वह आलसी हो जाते हैं, और पूरा काम करनेके योग्य नहीं रह जाते । (२) मादक पदार्थों के सेवन से शरीर निर्बल और रोगग्रस्त हो जाता है। (३) मादक पदार्थोंमें व्यर्थ धन नष्ट होताहै । (४) इस धन से लाभ उन मनुष्यों को होता है जो हानिकारक वस्तु उत्पन्न करते

हैं (५) यदि मादक पदार्थों की मांग न होती तो इनके उत्पन्न करने में जितना परिश्रम व्यय किया जाता है वह अवश्यही किसी लाभदायक कार्य में लगता।

शोकका विषय है कि लोग महानिन्द्यसे निन्द्य कार्य करनेपर भी देवताकी आड़ लगा लेते हैं। प्रायः बहुतसे गंजेड़ियों, भंगेड़ियोंको देखा है कि वह भंग खाते समय अथवा दम लगाते समय बंशंकर भोला-नाथ बोलते हैं और महादेवजीको गंजेड़ी भंगेड़ी बनानेसे नहीं चूकते। यह नितान्त भ्रम है किसी प्रामाणिक पुस्तक में महादेवजी का गांजा भांग पीना नहीं लिखा पाया जाता है।

विदित होता है कि नशाप्रिय लोगों ने इस आधार पर यह मनगढ़न्त करली है कि जब श्रीमहादेवजी ने गरल पान किया है तब उसमें सभी नशे आगये। महादेवजी देवता थे, उनको गरल पचाने की सामर्थ्य थी तौभी नीलकंठ होगये। मनुष्यों को उनकी देखादेखी जान बूझ कर गरल पान करना न चाहिये। इस का परि-णाम अच्छा नहीं है।

(नौवाबी व ठसक)

मादक पदार्थों से मिलती हुई हमारी नौवाबी है। किसी समय म हम धनी थे अब हमारे पास उतना धन नहीं है तौभी ठसक के मारे चुरे जाते हैं।

इन्हीं बातों में पुराने रईस बिगड़ गये। बाप दादोंकी रियासत मिट्टी में मिलादी। यह नहीं समझते कि प्रत्येक मनुष्यकी धनाढ्यता उसकी आय पर निर्भर है। यदि आयके अनुसार व्यय न किया

जाय तो निरी मूर्खता है। इसी प्रकार बहुत से हिन्दुस्तानी रईस व्यर्थ धन फूकने में तथा लोगों को यह दिखाने में कि हम पैसा कोई चीज नहीं समझते, अपनी अमीरी तथा रईसी समझते हैं।

एक नौवाब साहब का हाल है कि अपनी शेखी बघारने को १००) का नोट सिगरट पर लपेट कर पीडाला।

एक रईस साहब ने कलकत्ते में जाकर किसी वर्जित स्थान पर अपना डंका बजवाया जिस के कारण उनको एक हजार रुपया जुरमाना हुआ। उन्हो ने दो चौबें और डंके पर लगवादीं और दो तोड़े और फेंक दिये।

ऐसेही एक रईस से रेलगाड़ीमें लालटेन फूट गई, गार्ड ने उस का पता लगाकर सज्जनता से लालटेन के दामही उनपर चार्ज किये। रईस साहब ने उस कमरेकी दूसरी लालटेन भी तोड़दी और दूने दाम जुरमानाके दे दिये, साथही इसके ५) और गार्डको मिठाई खाने को दिये, गार्ड हिन्दुस्तानी रईसोंकी मूर्खता पर हँसता हुआ चला गया।

बहुत से रईस ऐसे हैं जिनको नित प्रति के खाद्य पदार्थ तभी तक रुचते हैं जब तक उनके दाम अधिक पड़ते हैं।

यह दशा तो रईसों की है परन्तु बहुत से हमारे सामान्य भाई भी ठसक और बनावट में मस्त हैं। घर में चाहै टूटा तवा भी न हो, चाहै जोड़ू के लुगरा भी न हो पर आप बूट जूता डटे पान खाये बाजार की सैर करते हैं।

धिक् है ऐसी नौवाबी और ठसक को, लानत है ऐसे व्यर्थ धन फूकने को, जो न इधर में हो, न उधर में—जिससे न स्वार्थ, बने न परमार्थ।

(तमाशबाज़ी)

इसी प्रकार के व्यय से मिलता जुलता हमारा नाच तमाशे का व्यय है । हमारे धनी भाइयों को विचारना चाहिये कि धन व्यर्थ नष्ट न करके उस से कोई ऐसा काम करैं जिससे देशके भूखे भाइयों की उदरज्वाला शान्त होने का प्रवन्ध हो, अथवा जिससे देश का कोई उपपकार हो ।

इस विषय का वर्णन द्वितीय भागके विवाह प्रकरण में विस्तार-पूर्वक हो चुका है अतः यहां उसीको न दोहरा कर केवल यह कहता हूं कि भाइयो ! आप की कमाई का पैसा देशकी विद्या और गुण की वृद्धि के अर्थ सुयोग्य विद्यार्थियों की सहायतामें लगे वह अच्छा ? या नाच तमाशा रंडी मुंडियों में उठै वह अच्छा ? स्वयं विचारलो।

(मुक़द्दमेबाज़ी)

हमारी आय का एक बड़ा भाग अदालत और मुकद्दमे बाजी में उठता है और प्रायः देखा गया है कि अंतको जो जीतताहै उसका भी खर्च इतना हो जाता है कि " टके की बुलबुल और नौ टका हुसकाई " पड़ जाते हैं ।

प्रायः जमीदारों में एक मेड़ के पीछे फौजदारियां हो जाती हैं । सैकड़ों के शर टूटते है । फिर उसी पर दीवानी होतीहै वह दीवाना ही करके छोड़ती है ।

क्या ही अच्छा होता यदि हम सब अपने मुकद्दमे पंचायतों द्वारा निपटाने का प्रयत्न करते । इस दशामें तो हमसे शूद्रही अच्छे हैं जिनके यहां महतिया सब मामले निपटा डालता है । हम तो

किसी की भी नहीं सुनते, आंखमूँद कर मुकद्दमेबाजी में रुपये लुटाते हैं । यदि कोइ पूँछता है कि भाई इस में क्या बुद्धिमानी है कि जितना पाओगे उस से अधिक खरचोगे तो भी हारने जीतने की शंका लगी रहेगी । उसका उत्तर यह देते हैं कि भाई मामला बातका है कुछ रुपये पैसे का नहीं ।

बनारस में एक पांच गज लम्बा एक गज चौड़ा चबूतरा है, उस को लक्खी चबूतरा इस कारण कहते हैं कि उस के लिये दो शिष्ट पुरुषों में अदालत हुई थी उस में उभय पक्ष के एक २ लाख रुपये खर्च हुये थे, यह चबूतरा किसी अच्छे मौके से भी नहीं है तो भी देश के इतने रुपये लेमरा ।

(आलस्य)

आलस्य के कारण अपना प्रबन्ध न देखनाभी एक प्रकार का प्रच्छन्न अपव्यय है । इसकी भी हमारे यहां कमी नहीं है, और देश के अमीरों के यहां तो इसकी बड़ी धूम है । गिर्दे के सहारे बैठके में पड़े २ हुक्का गड़गड़ाने के सिवा और कुछ नहीं सधता । यह भी नहीं जानते कि हमारे यहां आज कौन पुरुष क्या काम कर रहा है। हमारे हाथी को रातिब मिलता है या नहीं । हमारे घोड़े को घास दीजाती है या नहीं। हमारे बैलों का पेट चारा पानी से भरता है या नहीं । फिर गांव इलाके पर जाना, प्रजा की सुनना, तथा अपने काम काज देखना तो बड़ी दूरहै, जब जो चीज आंखके सामने रहती है उस से भी आंखें बन्द किये रहते हैं ।

इंगलैण्ड में एक प्रसिद्ध कहावत है—

"The worst landlord can manage his estate better than the Government."

अर्थात् निकृष्ट से निकृष्ट ज़मीदार अपने गांओं का प्रबन्ध सर्कार से अच्छा कर सक्ता है। परन्तु यहां आलस्य ने लोगों को ऐसा शिथिल कर रक्खा है कि सरकार को उन के गांओं का प्रबन्ध कोर्टआफ़वार्डस से कराना परता है।

भाइयो! यह क्या अपने को विदेशियों से हँसाते हो? एकदम आलस्य और निरुद्यमता को त्याग कर सुख के भागी होवो।

(समय व्यर्थ नष्टकरना)

समय व्यर्थ नष्ट करना भी एक बड़ा अपव्यय है। हम कभी विचारते ही नहीं कि हमने अपना कितना समय नष्ट करदिया और उतने समय में हम क्या २ काम कर सक्ते थे।

बड़े आश्चर्य की बात है कि जिस समय के मिनट २ और सेकंड २ जोड़कर हमारी आयु बनी है उस समय की भी क़दर हम नहीं करते। जितना समय व्यर्थ नष्ट होता है उतनीही हमारी आयु निःप्रयोजन व्यय होती है। हम में जो पुरुष कुछ कामकाजी हैं वह यही गाया करते हैं कि क्या करें भाई बड़ा काम है समय नहीं मिलता। पर यदि जांच कीजियेगा तो विदित होजायगा कि उन महानुभावों के कई घण्टे नित्यप्रति व्यर्थ नष्ट होते हैं और ७ या ८ घण्टे से अधिक काम नहीं करना पड़ता। उसतरह बैठे रहने को चाहै कोई पुरुष तमाम रात दिन बैठा रहे परन्तु काम करना कोई और वस्तु है।

हमलोग जब अँगरेजों के इस वाक्य पर--

"The busiest men have most leisure."

अर्थात् सब से अधिक कार्यवद्ध मनुष्यों को सब से अधिक अवकाश मिलता है—ध्यान देने की योग्यता सम्पादन करलेंगे उस दिन भारत का उद्धार दूर न रहजायगा ।

चौपाई ।

वेद शास्त्र निधि शशि शुभ वर्षा ।
वैश्यविभूषण पूर्ति सहर्षा ॥
जाति सुधार स्वदेश भलाई ।
पढ़िपढ़ि सुजन करहिं चितलाई ॥

इतिश्री वैश्यवंशविभूषणे तृतीयोभागः ।

" एङ्गलो ओरियंटल प्रेस लखनऊ, में मुद्रित.